।।श्रीः।।

काशी आयुर्वेद ग्रन्थमाला

77

रोग निदान एवं विकृति विज्ञान

(भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली के पाठ्यक्रमानुसार)

द्वितीय भाग

लेखक

डॉ. दीप्ति पाराशर (मेहता)

एवं

सहलेखक

डॉ. आशीष मेहता

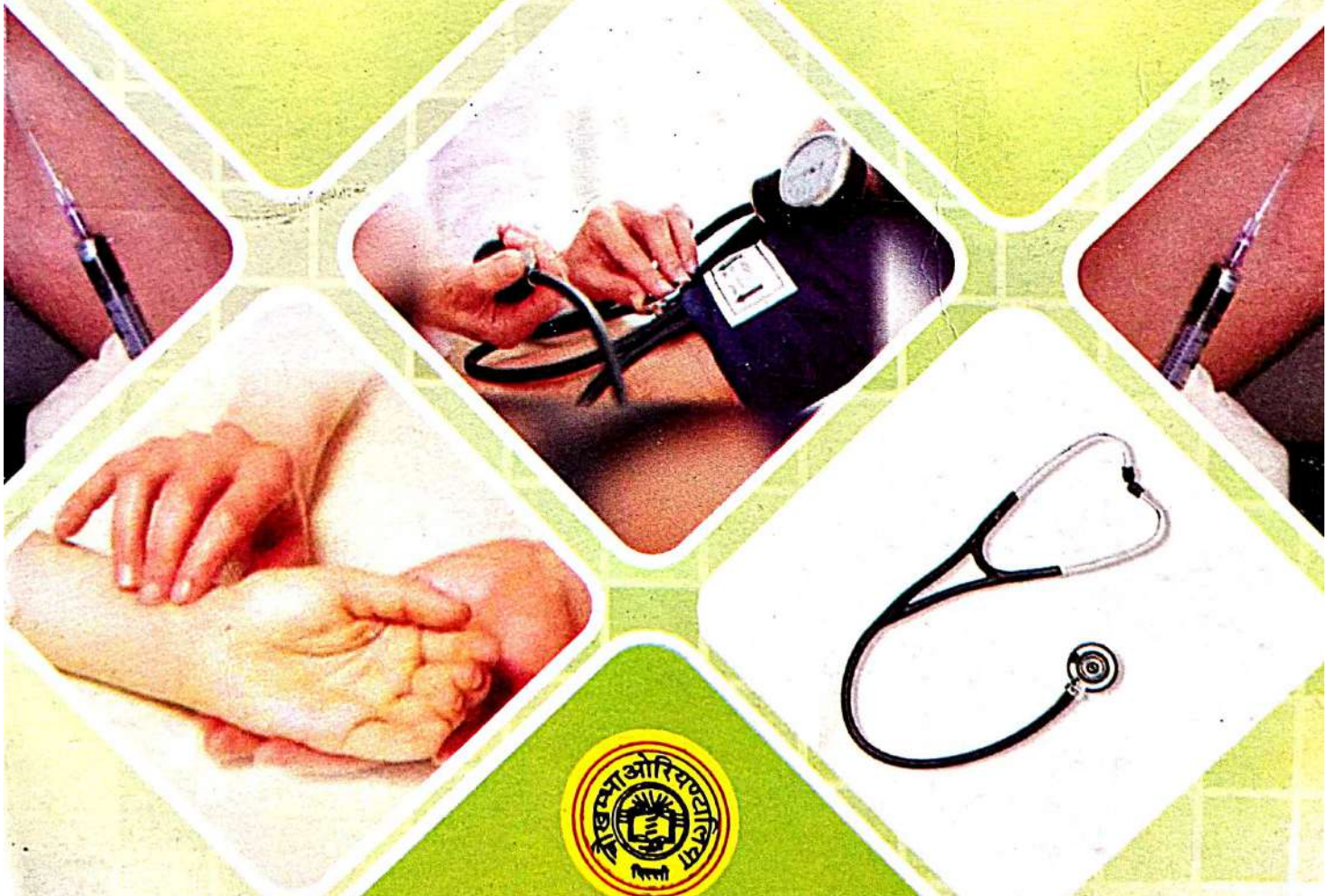

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्य विद्या, आयुर्वेद तथा दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक

दिल्ली (भारत)

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

अनुक्रमांक

प्राक्कथन	iii
प्रस्तावना	v
भूमिका	vii

PART-A

I रसवह स्त्रोतस के रोग	**1**
• ज्वर	1
• सन्निपातज ज्वर	7
• विषम ज्वर	9
• धातुगत ज्वर	12
• General Mechanism of Fever	19
• Malaria	24
• Typhoid	27
• Dengue Fever	31
• Influenza	33
• Bird flu - (Influenza A/ H5N1)	35
• Swine flu - (H1N1)	36
• Chikungunya	37
• पाण्डु	39
• आमवात	43
• हृद रोग	46
• शोथ	50
• Anemia and its Classification	56
• Rheumatic Fever	62
• Rheumatoid Arthritis	65
• Hypertension	74
• Angina	80

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

V. अस्थिमज्जावह स्त्रोतस के रोग **199**

- वातव्याधियाँ 199
- आक्षेपक 205
- अर्दित 206
- पक्षाघात 209
- गृध्रसी 211
- विश्वाची 212
- मन्यास्तम्भ 214
- Osteoarthritis 223
- Osteoporosis 229
- Parkinson's disease 233
- Stroke 237
- Lumbago-Sciatica Syndrome 245
- Bell's palsy 250
- Spondylitis 253
- Ankylosing Spondylitis (AS) 259

VI. शुक्रवह स्त्रोतस के रोग **265**

- क्लैब्य 265
- वंध्यत्व 271
- Infertility (Male-Female) 274

PART-B

VII. प्राणवह स्त्रोतस के रोग **279**

- कास 279
- श्वास 283
- हिक्का 288
- उर:क्षत 292
- शोष 294
- राजयक्ष्मा 296
- स्वरभेद 302
- Pneumonia 304
- Pleural effusion 312

- Bronchitis 315
- Bronchiectasis 319
- Bronchial Asthma 323

VIII. अन्नवह-पुरिषवह स्त्रोतस के रोग 329

- अग्निमांद्य 329
- अजीर्ण 331
- अरुचि (अरोचक) 334
- छर्दि 337
- अम्लपित्त 341
- शूल-परिणामशूल-अन्नद्रवशूल 344
- अतिसार 349
- प्रवाहिका 353
- ग्रहणी 354
- गुल्म 360
- उदररोग 365
- आनाह-आध्मान-आटोप 370
- विसूचिका-अलसक-विलंबिका 371
- Peptic Ulcer 375
- Irritable Bowel Syndrome 378
- Diarrhea 381
- Dysentery 386
- Constipation 389
- Inflammatory Bowel Diseases (IBD) 392

IX. उदकवहस्त्रोतस के रोग 395

- तृष्णा 395
- दाह 398
- Water and Electrolyte Imbalance Disorders 399

X. मूत्रवह स्त्रोतस के रोग 403

- मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात 403
- अश्मरी 408
- Urinary Tract Infection 410

- Nephropathies 412

XI. स्वेदवहस्त्रोतस के रोग 414

- खालित्य-पालित्य 414

XII. मनोवह स्त्रोतस के रोग 416

- अपस्मार 416
- उन्माद 420
- अनिद्रा 428
- विषाद 430
- मद-मूर्च्छा 431
- संन्यास 436
- Epilepsy 437
- Depression 442
- Anxiety Neurosis 445

XIII. उपसर्गजन्य व्याधियाँ 451

- रोमांतिका 451
- मसूरिका 452
- फिरंग 458
- Measles 460
- Chicken pox 463
- Leprosy 466
- Tuberculosis 474
- AIDS 484

XIV कृमि रोग 492

- कृमि रोग-परिभाषा, भेद एवं लक्षण 492
- स्नायुक 497
- श्लीपद 498
- Guinea Worm Disease 500
- Filariasis 502
- Classification of common Parasites 508

References 513

PART-A

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

I रसवह स्त्रोतस के रोग

ज्वर

आचार्य चरक ने ज्वर को सभी शारीरिक रोगों में प्रधान मानकर निदानस्थान में सर्वप्रथम ज्वर का वर्णन किया है। ज्वर एक ऐसी व्याधि है जिससे न केवल मनुष्य बल्कि पशु-पक्षी-वृक्ष-जल-पृथ्वी आदि सभी ग्रस्त होते हैं जन्म एवं मृत्यु दोनों ही अवस्थाओं में ज्वर की स्थिति रहती है। ज्वर न केवल शरीर बल्कि मन एवं इंद्रियों को भी संतप्त करता है। कभी यह स्वतंत्र व्याधि के रूप में प्रकट होता है एवं कभी अन्य व्याधियों में लक्षणरुप में प्रकट होता है प्रत्येक प्राणी अपने जीवनकाल में एक बार तो अवश्य ही ज्वर से पीड़ित होता है। यह ज्वर सभी व्याधियों में प्रधान एवं बलवान माना गया है। ज्वर की उत्पत्ति भी सभी रोगों में सर्वप्रथम मानी गई है। रुद्र के कोप से ज्वर की उत्पत्ति की पौराणिक कथा ग्रंथों में प्रचलित है।

ज्वर के निदान-सम्प्राप्ति

आचार्य चरकानुसार दोषानुसार निदान

वातज ज्वर निदान	पित्तज ज्वर निदान	कफज ज्वर निदान
• रुक्ष-लघु-शीत आहार विहार का सेवन	• उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार कटु आदि द्रव्यों का अतिसेवन	• स्निग्ध, गुरु, मधुर पिच्छिल, शीत, अम्ल लवणादि का अतिसेवन
• वमन-विरेचन आदि पंचकर्मों का अतियोग		
• अतिव्यायाम	• अजीर्ण में भोजन	• दिवास्वप्न
• वेगविधारण	• तीक्ष्ण आतप-अग्नि का सेवन	• अति प्रसन्नता
• अनशन		• अव्यायाम
• अभिघात	• श्रम	
• शोक	• क्रोध	
• रात्रिजागरण	• विषमाहार	

आचार्य माधवकर ने माधवनिदान में संक्षेप में "मिथ्या आहार विहार" को ज्वरोत्पादक निदान बताया है, जिसका क्षेत्र अत्यंत व्यापक है।

माधवोक्त निदान-सम्प्राप्ति

मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥

अर्थात् मिथ्याआहार-विहार के सेवन से प्रकुपित दोष (वात, पित्त, कफ) आमाशय में आश्रित हो रस के साथ संपूर्ण शरीर में फैलकर कोष्ठाग्नि को बाहर निकाल कर ज्वर को उत्पन्न करते हैं।

सम्प्राप्ति चक्र

मिथ्या आहार-विहार → दोष प्रकोप → आमाशय में आश्रय
↓ रस के साथ
ज्वरोत्तपत्ति ← कोठाग्नि को बाहर निकालकर ← संपूर्ण शरीर में फैलकर

ज्वर के पूर्वरूप

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः।
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु॥
जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे॥
सामान्यतो विशेषास्तु जृम्भाऽत्यर्थः समीरणात्।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफादन्नारुचिर्भवेत्॥
रुपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः।
सर्वलिङ्गसमवायः सर्वदोषप्रकोपजे॥

(सु.उ.तं. 39)

ज्वर के पूर्वरूप 2 प्रकार से बताए गए हैं–

1. सामान्य पूर्वरूप
2. विशिष्ट पूर्वरूप

ज्वर पूर्वरूप

सामान्य

- थकावट
- किसी काम में मन न लगना
- शरीर का वर्ण परिवर्तन
- मुख का स्वाद खराब होना
- नेत्रों में पानी आना
- ठंडी हवा या धूप में बैठने की कभी इच्छा या कभी द्वेष होना
- अत्यधिक जृम्भा आना
- अंगमर्द
- शरीर में गुरुता
- रोमांच होना
- अरुचि
- आँखों के आगे अँधेरा छाना
- किसी काम में उत्साह न होना
- ठंड की अनुभूति होना

विशिष्ट

वातज	पित्तज	कफज
जृम्भा की अधिकता	नेत्रों में दाह होना	अन्न के प्रति अरुचि

दो-दो दोषों के विशिष्ट पूर्वरूप मिलने से द्वंद्वज विशिष्ट पूर्वरूप एवं तीनों दोषों के विशिष्ट पूर्वरूप मिलने से सन्निपातज विशिष्ट पूर्वरूप मिलते हैं।

ज्वर के लक्षण

ज्वर के लक्षण निम्न प्रकार से हैं–

ज्वर के सामान्य लक्षण

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते॥

(सु॰ उ॰ 39)

स्वेदावरोध, सन्ताप एवं सर्वांग में पीड़ा ये तीन लक्षण जिस व्याधि में एकसाथ होते है, वह ज्वर कहलाता है। आचार्य चरक ने ज्वर का प्रत्यात्म लक्षण बताया है–"शरीर एवं मन का सन्तप्त होना।"

ज्वरप्रत्यात्मिकं लिङ्गं सन्तापो देहमानसः।

(च.चि.3)

ज्वर के भेदानुसार लक्षण

सामान्यतः ज्वर के आठ भेद किए गए हैं–1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. वातपित्तज 5. पित्तकफज 6. वातकफज 7. सन्निपातज 8. आगन्तुज

दोषानुसार लक्षण

1 वातज ज्वर	2 पित्तज ज्वर	3 कफज ज्वर
• विषम वेग	• तीक्ष्ण वेग	• मन्द वेग
• निद्रानाश	• निद्राल्पता	• अतिनिद्रा
• मुखविरसता	• कुटुकास्यता	• मुखमाधुर्य
• शरीर में कंपन एवं रुक्षता	• कण्ठ, मुख ओष्ठ एवं नासिका में पाक	• शरीर गीले कपड़े से ढका हुआ होने की प्रतीति एवं शरीर में भारीपन एवं जकड़ाहट
• कण्ठ एवं ओष्ठ का सूखना	• वमन, अतिस्वेदप्रवृत्ति प्रलाप	• आलस्य
• छींक का रुक जाना	• मद, मूर्च्छा, दाह	• अन्न से अरुचि
• सिर, हृदयप्रदेश एवं अन्य अंगों में वेदना	• तृष्णा की अधिकता	• शीत की अनुभूति
		• रोमहर्ष
• मल का गाढ़ा (कड़ा) होना	• अतिसार	• कफष्ठीवन या वमन
• उदर में शूल एवं आध्मान	• भ्रम	
• अत्यधिक जृम्भा	• मल, मूत्र एवं नेत्रों का पीत वर्ण होना	• मल, मूत्र का वर्ण श्वेत
• वातज ज्वर का विशेष काल–वर्षा ऋतु	• पित्तज ज्वर का विशेष काल–शरद ऋतु	

4 वातपित्तज ज्वर	5 वातकफज ज्वर	6 कफपित्तज ज्वर
• तृष्णा	• स्तिमितता	• मुख की कफलिप्तता
• मूर्च्छा	• पर्वों में वेदना	• तिक्तास्यता
• भ्रम	• अतिनिद्रा	• तन्द्रा
• दाह	• गुरुता	• मोह
• निद्रानाश	• शिरोग्रह	• कास

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

• शिरोवेदना • कण्ठ एवं मुख का सूखना • वमन • रोमहर्ष • अरुचि • आँखों के आगे अँधेरा आना • पर्वों में वेदना • जृम्भा	• प्रतिश्याय • कास • स्वेद की अधिकता • सन्ताप • ज्वर का वेग मध्यम	• अरुचि • तृष्णा • कभी ठंड लगना कभी गर्मी लगना

7. सन्निपातिक ज्वर के लक्षण

1. क्षण में दाह एवं क्षण में शीत की प्रतिती होना
2. अस्थि, सन्धि एवं सिर में वेदना
3. नेत्र स्त्रावयुक्त, मलिन एवं रक्त वर्ण के, विस्तृत या अंदर धँसे हुए
4. कानों में अकारण शब्दों का सुनाई पड़ना, कर्णशूल
5. कण्ठ का यवशूकों से व्याप्त होने की अनुभूति
6. तन्द्रा
7. मोह
8. प्रलाप
9. कास
10. श्वास
11. अरुचि
12. भ्रम
13. जिह्वा झुलसी हुई सी, स्पर्श में खुरदरी
14. अंगों में शिथिलता
15. कफ, रक्त एवं पित्त मिश्रित ष्ठीवन (थूंक)
16. सिर का इधर-उधर घूमाना या पटकना
17. तृष्णा
18. निद्रानाश
19. हृदय में व्यथा (पीड़ा)
20. स्वेद, मूत्र एवं पुरीष का देर से एवं अल्प मात्रा में निकलना
21. शरीर अत्यधिक कृश नहीं जान पड़ता

22. निरन्तर कण्ठकूजन (कबूतर के समान घुर्घराहट)
23. शरीर पर श्याव या रक्त वर्ण के चकत्ते पड़ना
24. मूकता (बोलने में कष्ट या असमर्थता)
25. स्त्रोतसों में पाक
26. उदर में गुरुता
27. दोषों का देर में पाक होना

आचार्य चरक ने सन्निपातिक ज्वर के तेरह भेद किए हैं–

1. वातपित्तोल्वण हीनकफ (विभु)–भ्रम, तृष्णा, दाह, अंगगौरव, शिरोवेदना
2. वातकफोल्वण हीनपित्त (मकरी)–शीतानुभूति, कास, अरुचि, तंद्रा, तृष्णा, दाह, रुजा, वेदना
3. पित्तकफाधिक हीनवात (फल्गु)–छर्दि, शीतानुभूति, कभी दाह का अनुभव, तृष्णा, मोह, अस्थिशूल
4. वाताधिक हीनपित्तकफ (विस्फुरक)–सन्धि, अस्थि एवं शिर:शूल, प्रलाप, अंगगौरव, भ्रम, तृष्णा कण्ठ एवं मुख का सूखना
5. पित्ताधिक हीनवातकफ (आशुकारी)–मलमूत्र रक्तवर्ण या रक्तमिश्रित, दाह, स्वेद, तृष्णा, बलनाश, मूर्च्छा
6. कफाधिक हीनवातपित्त (कम्फण)–आलस्य, अरुचि, हल्लास, दाह, वमन, अरति, भ्रम, तन्द्रा, कास
7. हीनवातमध्यपित श्लेष्माधिक (वैदारिक)–प्रतिश्याय, छर्दि, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि, अग्निमांद्य
8. हीनपित्त मध्यकफ पित्ताधिक (याम्यक)–मूत्र एवं नेत्र हारिद्र वर्ण के, दाह, तृष्णा, भ्रम, अरुचि
9. हीनपित्त मध्यकफ वाताधिक (पाकल)–शिरोरुजा, कम्पन, श्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि
10. हीनपित्त मध्यवात कफाधिक (कर्कोटक)–शीतानुभूति, अंगगौरव, तन्द्रा, प्रलाप, अस्थि एवं शिर में अत्यन्त वेदना
11. हीनकफ मध्यवात पित्ताधिक (क्रकच)–मलभेद, अग्निमांद्य, तृष्णा, दाह, अरुचि, भ्रम
12. हीनकफ मध्यपित्त वाताधिक (सम्मोह)–श्वास, कास, प्रतिश्याय, मुखशोष, पार्श्व में अत्यंत वेदना

13. समप्रमाण में बढ़े हुए तीनों दोष (कूटपाकल)–क्षण में दाह, क्षण में शीत की प्रतिती, उपरोक्त सन्निपात ज्वर के जो सामान्य लक्षण बताए हैं वे सभी।

सन्निपातज ज्वर की साध्यासाध्यता

आचार्य चरक ने सन्निपातज ज्वरों की साध्यासाध्यता का विवेचन करते हुए कहा है कि यदि दोष एवं मल विबद्ध हो (निःसरण न हो रहा हो), जाठराग्नि नष्ट हो गई हो एवं सन्निपात ज्वर के सम्पूर्ण लक्षण प्रकट हो गए हों तो वह असाध्य होता है तथा इसके विपरित यदि दोष विबद्ध न हो अग्निप्रदीप्त हो तो एवं सन्निपातज्वर के संपूर्ण लक्षण प्रकट न हुए हो तो ऐसा सन्निपातज्वर कृच्छसाध्य होता है।

सन्निपातज्वर का उपद्रव

आचार्य चरक ने रोग के अन्त में कर्णमूल में भयंकर शोथ उत्पन्न होना बताया है।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते॥

(च.चि. 3)

यदि यह कर्णमूल शोथ ज्वर के आदि में हो तो साध्य, मध्य में हो तो कृच्छ्रसाध्य एवं अंत में हो तो असाध्य होता है।

सन्निपातज्वर की कालावधि

आचार्य सुश्रुत ने सन्निपातज्वर की कालमर्यादा बताई है–सातवें, दसवें या बारहवें दिन या तो सन्निपातज ज्वर अत्यंत प्रबल होकर रोगी को मार डालता है या शांत हो जाता है। यह कालमर्यादा वातप्रधान–सातवें दिन, पित्तप्रधान–दसवें दिन एवं कफप्रधान–बारहवें दिन की है। कभी–कभी वातप्रधान–चौदहवें दिन, पित्तप्रधान, अठारहवें दिन एवं कफप्रधान चौबीसवें दिन प्रबल या शांत होता है।

अभिन्यास ज्वर

सन्निपातज ज्वर का ही एक भेद है अभिन्यास ज्वर। जब प्रकुपित तीनों दोष उरः प्रदेश (उरःस्रोतों) में घूमते हुए आम के अत्यधिक बढ़ जाने से ग्रथित होकर बुद्धि, इन्द्रिय एवं मन को आक्रान्त कर इस महाभयंकर अभिन्यास ज्वर को

उत्पन्न करते हैं। इसके लक्षण हैं–

1. कानों से सुनाई न देना
2. नेत्रों से देख न पाना।
3. किसी भी प्रकार की चेष्टा न कर पाना
4. नेत्रों से रूप दर्शन में असमर्थता
5. घ्राण ज्ञान, स्पर्शज्ञान एवं शब्दज्ञान का नाश
6. सिर का इधर-उधर पटकना
7. खाने की इच्छा न होना
8. कण्ठकूजन
9. तोद
10. बार-बार करवट बदलना
11. अल्प भाषण

इस प्रकार भयंकर लक्षण उत्पन्न होते है तथा यह असाध्य है।

8. आगन्तुक ज्वर

आगन्तुक ज्वर चार प्रकार का बताया गया है।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः।
आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत्॥

1. **अभिघातज**–बाह्य अभिघात जैसे काष्ठ, दण्ड, पत्थर, शस्त्रादि से आघात, हिंसक जीवजन्तु आदि के दंत, नख आदि का आघात आदि।
2. **अभिचारज**–तंत्र, मंत्र आदि के प्रयोग से होने वाला ज्वर।
3. **अभिशापज**–गुरु, ब्राह्मण, वृद्ध, सिद्ध आदि द्वारा दिए गए शाप से उत्पन्न ज्वर।
4. **अभिषङ्गज**–काम, क्रोध, लोभ, शोक, मोह आदि के संसर्ग से भूतोन्माद के लक्षण मिलते हैं।

आगन्तुक ज्वरों में प्रथम व्यथा उत्पन्न होती है तथा कुछ समय के बाद दोषों से युक्त हो जाते है।

जैसे–अभिघातज में वातरक्त का संसर्ग, अभिषंगज में वातपित्त का संसर्ग एवं अभिचारज एवं अभिशापज में सन्निपातज होता है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

आगन्तुज ज्वरों के लक्षण

अभिघातज ज्वर–वेदना, शोथ, विवर्णता, ज्वर।

अभिषंगज ज्वर–भूतोन्माद के लक्षण, भूताभिषंगज ज्वर में उद्वेग, कभी हँसने कभी रोने की प्रवृत्ति एवं कम्पन।

अभिचारज एवं अभिशापज ज्वर–मूर्च्छा, तृष्णा।

विषजन्यज्वर–मुख का वर्ण श्याव या नील, अतिसार, अरुचि, तृष्णा, तोद एवं मूर्च्छा।

औषधिगन्धजज्वर–मूर्च्छा, शिरशूल, वमन, छींके आना।

कामज्वर–चित्तविभ्रंश, तन्द्रा, आलस्य, भोजन की अनिच्छा, हृदप्रदेश में वेदना, मुख एवं शरीर का सूखना।

भयज एवं शोकज ज्वर–प्रलाप।

कोपज ज्वर–कंपन।

विषम ज्वर

जो ज्वर विषम काल में, विषम वेग से, विषम आरंभ के साथ हो उसे विषम ज्वर कहा गया है। आचार्य वाग्भट ने इसका लक्षण बताया है–

विषमो विषमारम्भक्रियाकालोऽनुषङ्गवान्।

जिसका आरंभ, क्रिया एवं काल विषम हो, जैसे **विषमारम्भ** अर्थात् ज्वर कभी सिर से, कभी पृष्ठ से शुरू हो **विषमक्रिय** अर्थात् कभी ठंड लगकर ज्वर का वेग हो कभी उष्णता के साथ ज्वर चढ़े, **विषमकाल** अर्थात् निश्चित समय से पहले या बाद में ज्वर का आक्रमण होना (आक्रमणकाल) निश्चित समय से कम या अधिक समय तक बने रहना (भोगकाल) कई आचार्य ऐसे ज्वर को विषम ज्वर कहते हैं जो छोड़कर पुनः हो जाए–

मुक्तानुबन्धित्वं विषमत्वम्।

अतः "मुक्तानुबन्धित्वं" भी विषमज्वर का प्रत्यात्म लक्षण है।

आचार्य सुश्रुत विषमज्वर को भूत संक्रमणजन्य मानते हैं।

विषमज्वर की निदान-सम्प्राप्ति

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्॥

(सु.उ. 39)

अर्थात् पहले से ही अगर दोष अल्प प्रमाण में हो या निर्बल हो, या ज्वर के छूट जाने के बाद बचे हुए अल्पदोष मिथ्याआहार विहार आदि कारणों से पुनः प्रकुपित होकर रसादि धातुओं में से किसी धातु को प्राप्त होकर विषमज्वर को उत्पन्न करता है।

विषम ज्वर भेद

विषमज्वर पाँच प्रकार का बताया गया है–

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयक चतुर्थकाः।

1. सन्तत ज्वर
2. सततक ज्वर
3. अन्येद्युष्क ज्वर
4. तृतीयक ज्वर
5. चतुर्थक ज्वर

धातुगत आश्रय

सन्ततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः।
मेदोगतस्तृतीयेऽहिव त्वस्थिमज्जगतः पुनः।
कुर्याच्चतुर्थकं घोरमन्तकं रोगसंकरम्॥

(सु.उ. 39)

1. सन्तत ज्वर	रस आश्रित
2. सततक ज्वर	रक्त आश्रित
3. अन्येद्युष्क ज्वर	मांसाश्रित
4. तृतीयक ज्वर	मेदोश्रित
5. चतुर्थक ज्वर	अस्थि एवं मज्जा आश्रित

विषमज्वरों के लक्षण

1. **सन्ततज्वर (Continuous Fever)**–जो ज्वर निरंतर सात, दस या बारह दिन तक चले एवं अविसर्गी स्वरूप का हो।
2. **सततक ज्वर (Double Quotidian Fever)**–जो ज्वर दिन में दो बार चढ़े।
3. **अन्येद्युष्क ज्वर (Quotidian Fever)**–जो ज्वर दिन में एक बार

चढ़े।

4. **तृतीयक ज्वर (Tertian Fever)**–जो ज्वर एक दिन छोड़कर अर्थात् हर तीसरे दिन चढ़े।
5. **चतुर्थक ज्वर (Quartan Fever)**–जो ज्वर हर चौथे दिन चढ़े।

तृतीयक ज्वर के पुनः तीन भेद हैं–

1. **कफपित्तोल्वण तृतीयक ज्वर**–त्रिक प्रदेश को प्रथम पीड़ित करते हुए इस ज्वर का वेग आता है।
2. **वातकफोल्वण तृतीयक ज्वर**–पृष्ठ प्रदेश को पीड़ित करता हुआ इस ज्वर का वेग आता है।
3. **वातपित्तोल्वण**–शिरः प्रदेश को पीड़ित करते हुए इस ज्वर का वेग आता है।

चतुर्थक ज्वर के भी दो भेद किए गए है–

1. **श्लेष्मोल्वण चतुर्थक ज्वर**–प्रथम जंघा प्रदेश को पीड़ित करते हुए ज्वर का वेग उत्पन्न होता है।
2. **वातोल्वण चतुर्थक ज्वर**–प्रथम सिर को पीड़ित करते हुए ज्वर का वेग उत्पन्न होता है।

आचार्य चरक एवं वाग्भट ने **चतुर्थक विपर्यय** ज्वर का वर्णन किया है–जो ज्वर मध्य के दो दिन बना रहे एवं पूर्व एवं अंत के दिन ना रहे उसे चतुर्थक विपर्यय जानना चाहिए, इसे Double Quartan कह सकते हैं। इसमें दोष आमाशय, हृदय, कंठ एवं सिर में रहते हैं इसी प्रकार आचार्य जेज्जट ने अन्येद्युष्क एवं तृतीयक विपर्यय ज्वर का भी वर्णन किया है।

अन्येद्युष्क विपर्यय–जब दोष आमाशय एवं हृदय में रहता है तो अन्येद्युष्क विपर्यय ज्वर होता है। इसमें दिन एवं रात के दो समय छोड़कर बाकी समय ज्वर बना रहता है।

तृतीयक विपर्यय–दोष जब आमाशय, हृदय एवं कंठ में रहते हैं तब ज्वर दो दिन लगातार आकर तीसरे दिन नहीं आता।

अन्य ज्वर भेद

वातबलासक ज्वर–अष्टांग संग्रह में वातबलासक ज्वर का वर्णन मिलता है। नाम से ही स्पष्ट है वात एवं कफ के प्रकोप से होने वाले इस ज्वर में रोगी को

नित्य मंदज्वर रहता है, शरीर (त्वचा) में रुक्षता, अंगों में शोथ, अवसाद एवं स्तब्धता (जकड़ाहट) रहती है।

नित्यं मन्दज्वरो रुक्षः शूनकस्तेन सीदति।
स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठा नरो वातबलासकी॥

(अ.सं.नि. 2)

प्रलेपक ज्वर

गुरुता एवं पसीने से शरीर को लिप्त करने वाला शीतपूर्वक एवं मंदस्वरूप का ज्वर प्रलेपक कहलाता है।

प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च।
मन्दज्वरविलेपि च सशातः स्यात् प्रलेपकः॥

(अ.सं.नि. 2)

धातुगत ज्वर

सप्त धातुओं का आश्रय कर होने वाले धातुगत ज्वर सात प्रकार के बताए गए हैं। इनमें से रस, रक्त, मांस एवं मेद धातु का आश्रय कर होने वाले ज्वर साध्य होते हैं। अस्थि एवं मज्जाधातु गत ज्वर कृच्छ्रसाध्य तथा शुक्र धातुगत ज्वर असाध्य होता है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

धातुगत ज्वर के लक्षण

रसगत	रक्तगत	मांसगत	मेदगत	अस्थिगत	मज्जागत	शुक्रगत
• शरीर में गुरुता	• रक्तवमन (रक्तष्ठीवन)	• पिण्डलियों में ऐंठन	• स्वेदाधिक्य	• अस्थि में भेदनवत् पीड़ा	• आँखों के आगे अँधेरा छाना	• शिश्न का स्तब्ध हो जाना
• हृदय में उत्क्लेद (बेचैनी)	• दाह	• तृष्णा	• तृष्णा	• कराहना	• हिक्का	• शुक्र का निकल जाना
• शरीर में शिथिलता	• ज्ञानशून्यता (मोह)	• मलमूत्र की अधिक एवं अनियंत्रितप्रवृती	• मूर्च्छा • प्रलाप	• श्वास • अतिसार	• कास	
• वमन	• वमन	• उष्माधिक्य	• छर्दि (वमन)	• अंगों का इधर-उधर फेंकना	• ठंड लगना • वमन	• मृत्यु
• अरुचि • दीनता	• विभ्रम • प्रलाप	• अन्तर्दाह • विक्षेप (अंगों का फेंकना)	• शरीर में दुर्गंध • अरोचक	• वमन	• अन्तर्दाह • महाश्वास	
	• पिड़िका	• ग्लानि	• ग्लानि		• मर्मस्थानों में छेदनवत् पीड़ा	
	• तृष्णा • प्रलाप		• असहनशीलता			

आम-पच्यमान-निराम ज्वर लक्षण

आम ज्वर	पच्यमान ज्वर	निरामज्वर
• लालास्त्राव	• ज्वर का वेग अधिक तीव्र होना	• भूख लगना
• हल्लास	• तृष्णा की प्रबलता	• कृशता
• हृदय की अशुद्धि की प्रतीति	• प्रलाप	• शरीर में लघुता
• अरोचक	• श्वास की तीव्रता	• ज्वर का हल्का होना
• तन्द्रा	• भ्रम	• दोष एवं मलों की प्रवृत्ति
• आलस्य	• मल की प्रवृत्ति	• ज्वर का आठवां दिन
• अविपाक	• उत्क्लेश (वमन की इच्छा)	
• मुख की विरसता		
• शरीर की गुरुता		
• भूख न लगना		
• मूत्र की बारंबारता		
• स्तब्धता		
• ज्वर की तीव्रता		

आमज्वर

लालाप्रसेको हृल्लासहृदयाशुद्धयरोचकाः।
तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता।
क्षुन्नाशो बहुमुत्रत्वं स्तब्धता बलावाञ्ज्वरः॥
आमज्वरस्य लिंङ्गनि न दद्यान्तत्र भेषजम्॥

(माधव)

पच्यमानज्वर

ज्वरवेगोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम्॥

(माधव)

निरामज्वर

क्षुत् क्षामता लघुत्वं च गात्रणां ज्वरमार्दवम्।
दोषप्रवृत्तिरष्टाहो निरामज्वरलक्षणम्॥

(च.चि. 3)

प्राकृत-वैकृत ज्वर

जिस दोष का जो प्राकृत प्रकोप काल है उस काल में उस दोष से होने वाला ज्वर प्राकृत कहलाता है। उसके विपरित होने वाला ज्वर वैकृत कहलाता है।

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात्।
वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्य प्राकृतश्चानिलाद्भवः।।

(वा.नि. 2)

अर्थात् वर्षा, शरद एवं वसन्त ऋतु में क्रमशः वात, पित्त एवं कफ से होने वाले ज्वर प्राकृत कहलाते है, अन्य दोषजनित ज्वर वैकृत कहलाते हैं। अर्थात् वर्षा में होने वाला पित्तज या कफज ज्वर, शरद में होने वाला वातज या कफज ज्वर, शरद में होने वाला वातज या कफज ज्वर एवं वसन्त में होने वाला वातज या पित्तज ज्वर वैकृत ज्वर कहलाता है।

सभी वैकृतज्वर एवं प्राकृत वातिक ज्वर कृच्छ्रसाध्य होते हैं।

अन्तर्वेग-बहिर्वेग ज्वर

जब ज्वर का वेग एवं दाह आदि लक्षण अंदर से अधिक महसूस हो एवं बाहर संताप कम हो तो उसे अंतर्वेग ज्वर कहते हैं तथा जब बाहरी संताप अधिक हो आंतरिक दाह आदि लक्षण अल्प हो तब बर्हिवेग ज्वर कहलाता है।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः।।
अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत्।
सन्तापो ह्यधिको बाहयस्तृष्णादीनां च मार्दवम्।।
बर्हिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च।।

(च.चि. 3)

अन्तर्वेग ज्वर में आंतरिक दाह की अधिकता, तृषाधिक्य, प्रलाप, श्वास, भ्रम, संधि-अस्थि आदि में शूल, स्वेदप्रवृत्ति एवं दोष तथा मलों का अवरोध ये लक्षण मिलते हैं एवं बहिर्वेग ज्वर में बाह्य संताप की अधिकता तथा तृष्णा आदि अन्य लक्षणों की मृदुता होती है। बहिर्वेग ज्वर सुखसाध्य होता है।

पुनरावर्तक ज्वर

नाम से ही स्पष्ट है ज्वर से मुक्त होने के बाद पुनः ज्वर का हो जाना पुनरावर्तक कहलाता है।

ज्वर से मुक्त हो जाने के पश्चात् यदि व्यक्ति प्राकृत शरीर बल प्राप्त करने के पूर्व ही अपथ्य का सेवन करता है तो वह पुनः ज्वर से ग्रस्त हो जाता है, इसे पुनरावर्तकज्वर कहते हैं।

जीर्ण ज्वर

त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः।
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते॥
(मा.नि.)

जो ज्वर तीन सप्ताह तक बने रहने के बाद अल्प बल हो जाता है एवं जिसमें प्लीहावृद्धि एवं अग्निमांद्य हो जाता है, वह ज्वर जीर्णज्वर कहलाता है।

ज्वर मोक्ष के पूर्वरूप

ज्वर छूटने से पहले कुछ लक्षण प्रकट होते हैं। जैसे–

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पविड्भिदसंज्ञता।
कूजनं चास्य वैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे॥
(माधव)

1. दाह
2. स्वेद
3. भ्रम
4. तृष्णा
5. कंपन
6. मलभेद (अतिसार)
7. संज्ञानाश
8. कूजन (कराहना)
9. मुख से दुर्गंध आना

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

ज्वर मुक्त के लक्षण

ज्वर से छूट जाने के पश्चात् रोगी में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं–

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च।
क्षवथु श्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्॥

(सु.उ. 33)

1. स्वेदप्रवृत्ति
2. शरीर में हलकापन
3. सिर में कण्डू
4. मुखपाक
5. छींक आना
6. भूख लगना

ये सब ज्वरमुक्त के लक्षण है।

ज्वर के उपद्रव

1. श्वास
2. मूर्च्छा
3. अरुचि
4. अतिसार
5. विबंध
6. हिक्का

ज्वर की साध्यासाध्यता

साध्य लक्षण

1. बलवान व्यक्ति को होने वाला
2. अल्प दोषों से होने वाला
3. उपद्रवरहित

ज्वर साध्य होता है।

असाध्य ज्वर लक्षण

1. अधिक एवं बलवान कारणों से होने वाला
2. अनेक लक्षणों से युक्त
3. शीघ्र ही इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट करने वाला
4. क्षीण एवं शोथ युक्त व्यक्ति को होने वाला
5. गम्भीर एवं दीर्घकाल तक बना रहने वाला
6. जिसके बालों में अचानक माँग निकल आए
7. अंतर्वेग ज्वर–श्वास, कास, तृष्णा आदि लक्षणों से युक्त–
8. जो रोगी क्षीण एवं रुक्ष हो गया हो
9. जिसे संज्ञानाश हो गया हो
10. मूर्च्छित होकर पड़ा रहे, उठ न पाए
11. बाहर से शीत एवं अंदर से उष्णता से पीड़ित
12. रोमांच, रक्तनेत्रता, हृदशूल, मुख से श्वास लेता हो
13. हिक्का, श्वास, तृषा, मूर्च्छा से युक्त
14. चंचल नेत्र, निरंतर उच्छवास युक्त एवं क्षीण रोगी
15. जिसकी प्रभा एवं इन्द्रियाँ नष्ट हो गई हो, अरुचि से पीड़ित

इन लक्षणों ये युक्त ज्वर रोगी को असाध्य समझना चाहिए।

पाण्डु

इस रोग में रोगी का वर्ण पाण्डुर (श्वेत-पीत) हो जाता है, अतः इसे पांडु रोग कहा गया है। शरीर में होने वाले वर्ण परिवर्तन के आधार पर इसका नामकरण किया गया है।

शब्दकोष में पाण्डु का शाब्दिक अर्थ है–

पाण्डुस्तु पीत भागार्धः केतकी धूलि सन्निभः।

केवड़े के धूल के समान वर्ण पाण्डु वर्ण कहलाता है। आचार्य चरक एवं वाग्भट ने पाण्डुरोग पाँच प्रकार के माने है जबकि आचार्य सुश्रुत ने चार प्रकार का ही पाण्डु माना है। मृत्तिकाभक्षणजन्य पाण्डु को अलग से नहीं माना कारणों में ही समावेश कर लिया।

यद्यपि पाण्डुरोग में रक्त का क्षय होता है तथापि पाण्डु रोग का समावेश संतर्पणोत्थ विकारों के अंतर्गत किया गया है, तथा रक्त संबंधी व्याधि होने पर भी यह रसवह स्रोतों दृष्टि जनित व्याधि है यह इसकी विशेषता है।

दोष–त्रिदोष, पित्तप्रधान (रंजक पित्त)
दूष्य–रक्त, मांस, मेद, ओज, त्वचा
स्त्रोतस–रसवह
स्त्रोतोदुष्टिलक्षण–संग
अधिष्ठान–त्वचा
समुत्थान–आमाशयोत्थ

पाण्डु रोग के निदान-सम्प्राप्ति

व्यायाममम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्।
निषेवमाणस्य प्रदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति॥

(सु.उ.तं. 43)

पाण्डुरोग के यह निदान बताए गए हैं–

1. अति व्यायाम
2. अत्यधिक अम्ल, लवण पदार्थों एवं मद्य का सेवन
3. मिट्टी का सेवन
4. दिवास्वप्न

5. अत्यधिकतीक्ष्ण पदार्थों का सेवन

सम्प्राप्ति–उपरोक्त निदानों के सेवन से दोष प्रकुपित होकर रक्त को दूषित करके त्वचा को पांडु वर्ण का कर देते हैं।

पाण्डु रोग के पूर्वरुप

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृभ्दक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि॥

(सु.उ.तं. 44)

1. त्वचा में विदार
2. ष्ठीवन (बार-बार थूंक आना)
3. गात्रसाद (शरीर में शिथिलता)
4. मृद्भक्षण (मिट्टी खाने की इच्छा होना)
5. प्रेक्षणकूटशोथ (अक्षिकूट में शोथ)
6. मल-मूत्र का पीलापन
7. भोजन का अविपाक

आचार्य चरक एवं वाग्भट ने

8. हृद्स्पंदन का वर्णन किया है
9. रुक्षता एवं
10. स्वेदाभाव

पाण्डुरोग के लक्षण

पाण्डु के भेद या दोषानुसार लक्षण बताए गए हैं। किन्तु चरकाचार्य ने पाण्डु के सामान्य लक्षणों का वर्णन किया है–

सोऽल्परक्तोऽल्पमेदस्को निःसारः शिथिलेन्द्रियः। वैवर्ण्यं भजते।

(च.चि. 16)

1. अल्परक्तता
2. अल्पमेदता
3. सारहीन
4. इन्द्रियों की शिथिलता
5. शरीर या त्वचा की विवर्णता

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

इनके अलावा कर्णक्ष्वेड (कानों में आवाज होना), मन्दाग्नि, दुर्बलता, अन्नद्वेष, श्रम, भ्रम, गात्रशूल, ज्वर, श्वास, गौरव, अरुचि, अक्षिकूटशोथ, कृशता, रोमपात, क्रोध आना, शीत वस्तुओं से द्वेष, निद्रा का अधिक आना, ष्ठीवन, कम बोलना, पिंडलियों में ऐंठन, कटि ऊरु एवं पाद में शिथिलता, ऊँचे स्थान में चढ़ने की प्रतिति होना ये सब सामान्य लक्षण पाण्डुरोगी में मिलते हैं।

भेदानुसार लक्षण

पाण्डुरोग के पाँच भेद बताए गए हैं–

1. वातिक 2. पैतिक 3. कफज 4. सन्निपातज एवं 5. मृद्भक्षणजन्य

दोषानुसार

वातिक पाण्डु	पैत्तिक पाण्डु	कफज पाण्डु	सन्निपातज पाण्डु
– त्वचा, मूत्र, नेत्रादि की रुक्षता एवं कृष्ण या अरुणवर्णता	– मूत्र, मल एवं नेत्रादि का पीतवर्ण होना – दाह	– त्वचा, मल मूत्र एवं नेत्रादि का वर्ण श्वेत होना	– ज्वर – अरोचक –हल्लास
– तोद	–तृष्णा	– कफप्रसेक	– छर्दि
– कम्पन	– ज्वर	– शोथ	–तृष्णा
– आनाह	– अतिसार	– तंद्रा	
– भ्रम, शोफ,	– शरीर का वर्ण अत्यंत पीत हो जाता है	– आलस्य	– क्लम
आदि वातिक लक्षण		– शरीर का भारीपन	

मृद्भक्षणजन्य पांडु

आचार्य चरक ने हेतु की विशेषता से मृद्भक्षणजन्य पांडु का पृथक वर्णन किया है, तथा इसकी निदान एवं सम्प्राप्ति को इस तरह से वर्णित किया है–

मिट्टी का भक्षण करने वाले व्यक्ति का मिट्टी की प्रकृति के अनुसार कोई एक दोष प्रकुपित हो जाता है–जैसे–कषायरस प्रधान मिट्टी के सेवन से वात प्रकोप, क्षारयुक्त मिट्टी के सेवन से पित्त का प्रकोप या मधुर रस प्रधान मिट्टी के सेवन से कफ का प्रकोप होता है। मिट्टी अपने रुक्ष गुण के कारण खाए हुए अन्न एवं रसरक्तादि धातुओं को रुक्ष कर देती है तथा शरीर में अपाचित रहने

के कारण स्रोतों को अवरुद्ध कर देती है तथा इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट कर शरीर का तेज, वीर्य एवं ओज का नाश कर बल, वर्ण एवं अग्नि का नाश कर पांडु रोग को उत्पन्न करते हैं।

मृद्भक्षणजन्य पांडु के लक्षण

शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः।
क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम्॥

(च.चि.अ. 16)

1. अक्षिकूट, गण्डप्रदेश, भ्रू, पाद, नाभि एवं मूत्रेन्द्रिय में शोथ
2. उदर में क्रिमि की उत्पत्ति
3. रक्त एवं कफ मिश्रित मल का त्याग अधिक बार

पांडु रोग के असाध्य लक्षण

1. अत्यंत पुराना पांडुरोग जिसके कारण धातुओं में रुक्षता हो गई हो।
2. शोथयुक्त
3. जो रोगी सभी वस्तुओं को पीला देखे
4. जिसका मल कफयुक्त, हरा, बंधा हुआ एवं मात्रा में अल्प हो
5. हर्षरहित
6. छर्दि, मूर्च्छा एवं तृष्णा से ग्रस्त
7. जिसका शरीर श्वेत वर्ण से लिप्त प्रतीत हो
8. जिसका वर्ण अत्यधिक रक्तक्षय के कारण पाण्डु न रहकर श्वेत हो गया हो।
9. जिसके दंत, नख, नेत्र पांडु वर्ण के हो गए हो
10. जो सभी वस्तुओं को पांडु ही देखता हो
11. जिसके हस्त, पाद एवं सिर प्रदेश में शोथ हो या
12. जिसका मध्यभाग शोथ-युक्त एवं हस्तपाद सिर में शोथ न हो
13. जिसके गुदप्रदेश, लिंग एवं अण्डकोषों में शोथ हो गया हो
14. जो रोगी अत्यंत दुःखी एवं मृतप्राय प्रतीत हो
15. तीव्र ज्वर एवं अतिसार इन उपद्रवों से पीड़ित हो।

आमवात

आमवात का पृथक् व्याधि के रूप में वर्णन सर्वप्रथम माधवकर ने ही किया है। आचार्य चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट ने केवल सामवात का वर्णन किया है। माधव निदान के बाद के ग्रंथों में आमवात का स्वतंत्र व्याधि के रूप में वर्णन मिलता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है आमवात आम और वात इन दोनों से मिलकर बना है–

आमेन सहितः वातः आमवातः।

या

आमश्च वातश्च आमवातः।

कुछ आचार्यों ने आमवात को रसवात भी कहा है। आम रसधातु एवं वातप्रकोप से आमवात की उत्पत्ति होती है। अतः इसे रसप्रदोषज व्याधियों के अंतर्गत लिया गया है। प्रथम जो रसधातु उसका अग्निमांद्य आदि कारणों से जब उचित परिपाक नहीं होता तब वह अपक्व रह जाती है। उसका जब अपने कारणों से प्रकुपित वात के साथ संयोग होता है तब आमवात रोग की उत्पत्ति होती है।

आमवात की निदान संप्राप्ति माधव निदान के अनुसार–

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा॥
वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः।
स्त्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः॥
जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च।
व्याधिनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः॥
युगपत्कुपितावन्तस्त्रिसन्धिप्रवेशकौ।
स्तब्धं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते॥

अर्थात् जो व्यक्ति विरुद्ध आहार विहार करता हो, जिसकी अग्नि मंद हो, जो निश्चेष्ट हो या जो स्निग्ध भोजन करके तुरंत व्यायाम करे ऐसे व्यक्ति में अन्न का पाचन ठीक से न होकर आमरस बनता है, यह आमरस प्रकुपित वायु की प्रेरणा से श्लेष्मस्थानों (आमाशय, सन्धि, उरः प्रदेश, शिर, कण्ठ आदि) की ओर जाता है, वहाँ और अधि

क विकृत या विदग्ध होकर धमनियों में पहुँच जाता है। वहाँ स्थित वात-पित्त-कफ इन तीनों दोषों से मिलकर और अधिक दूषित होकर अनेक वर्णों वाला एवं पिच्छिल होकर सभी स्त्रोतसों में अभिष्यंद उत्पन्न कर देता है। जिसके कारण शरीर में दुर्बलता एवं हृदय में भारीपन उत्पन्न होता है। यह अनेक व्याधियों का आश्रय (जनक) एवं अत्यंत दारुण होता है। आम और वात एक साथ प्रकुपित होकर कोष्ठ, त्रिक एवं संधियों में प्रविष्ट होकर संपूर्ण शरीर को जकड़ देते हैं। ऐसे रोग को आमवात कहते हैं।

आमवात के सामान्य लक्षण

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा ह्यालस्यं गौरवं ज्वरः।
अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम्॥

(मा. नि.)

1. अंगमर्द
2. अरुचि
3. तृष्णा
4. आलस्य
5. अंगगौरव
6. ज्वर
7. अपाक
8. अंगों में शोथ

ये आमवात के सामान्य लक्षण हैं। इन सामान्य लक्षणों के अलावा माधव निदान में अतिप्रवृद्ध आमवात के भी लक्षण बताए हैं, वे निम्न हैं–

1. हस्त, पाद, शिर, गुल्फ, त्रिक, जानु, उरु की संधियों में सशूल शोथ उत्पन्न हो जाता है।
2. उपरोक्त स्थानों के अलावा भी जिन-जिन स्थानों पर आमदोष पहुँच जाता है वहाँ वृश्चिक दंशवत वेदना होती है।
3. अग्नि की मंदता
4. प्रसेक
5. अरुचि
6. गुरुता
7. उत्साह का न होना
8. मुख विरसता

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

9. दाह
10. बहूमूत्रता
11. कुक्षि में भारीपन (कठिनता) एवं शूल
12. निद्राविपर्यय (रात्रि में निद्रा का अभाव एवं दिन में सोना)
13. तृष्णा
14. छर्दि
15. भ्रम
16. मूर्च्छा
17. हृदग्रह
18. कोष्ठबद्धता
19. शरीर में अकर्मण्यता
20. आन्त्र कूजन एवं आनाह

एवं अन्य अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं। यह अवस्था सभी रोगों में अत्यंत कष्टसाध्य बताई गई है।

दोषानुबंध के अनुसार आमवात के लक्षण

पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम्।
स्तिमितं गुरुकण्डूं च कफदुष्टं तमादिशेत्॥

(मा. नि.)

पित्त का अनुबंध–दाह एवं लालीमा

वात का अनुबंध–अत्यधिक शूल

कफ का अनुबंध–स्तिमितता (गीले चमड़े से ढके होने की प्रतीति) गुरुता, कंडू ये लक्षण मिलते हैं।

साध्यासाध्यक्षता

एक दोषानुग : साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते।
सर्वदेहचरः शोथः सः कृच्छ्रः सान्निपातिकः॥

(मा. नि.)

एकदोषज–साध्य

द्विदोषज–याप्य

सन्निपातिक, सर्व शरीरगत शोथ युक्त, कृच्छ्रसाध्य होता है।

हृद रोग

नाम से ही स्पष्ट है हृदय से संबंधित रोग। चाहे हृदय की रचनात्मक विकृति हो या क्रियात्मक विकार हो। आचार्य चरक ने पाँच प्रकार के हृदरोगों का वर्णन किया है आयुर्वेदीय ग्रंथों में हृदरोग संबंधी अत्यल्प वर्णन का प्राप्त होना इस बात का प्रमाण है कि उस काल में हृदरोगों की व्यापकता इतनी अधिक नहीं थी जो वर्तमान समय में है।

हृदरोग के कारण

अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः॥

(मा. नि.)

1. अतिउष्ण पदार्थों (अन्न) का सेवन
2. अति गुरु पदार्थों (अन्न) का सेवन
3. कषाय एवं तिक्त-रसात्मक पदार्थों का सेवन
4. अतिश्रम
5. अभिघात
6. अध्यशन
7. अतिचिंतन
8. अधारणीय वेगों का धारण

इन कारणों से पाँच प्रकार के हृदय रोग उत्पन्न होते है इनके अलावा आचार्य दृढ़बल ने चरक संहिता में हृदयरोगों के निम्न कारण बताए है–

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकबस्तिचिन्ताभयत्रासमदाभिचाराः।
छर्द्यामसन्धारणकर्षणानि हृद्रोगकर्तृणि तथाऽभिघातः॥

(च.चि. 26)

1. अतिव्यायाम 2. तीक्ष्ण विरेचन 3. तीक्ष्णबस्ति 4. चिन्ता 5. भय 6. त्रास 7. अभिचार 8. छर्दि 9. वेगविधारण 10. कर्षण 11. अभिघात

आचार्य चरक के अनुसार हृद रोग के पाँच प्रकार हैं–

1. **वातिक हृदरोग**
2. **पैत्तिक हृदरोग**

3. श्लैष्मिक हृदरोग
4. सन्निपातिक हृदरोग एवं
5. कृमिज हृदरोग

हृदरोग की सम्प्राप्ति

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥

(सु.उ. 43)

अपने कारणों से प्रकुपित दोष जब रस को दूषित करके हृदय में जाकर वहाँ अवस्थित हो हृदय में बाधा उत्पन्न करते हैं, तब उसे हृदरोग कहते हैं।

हृदरोग के सामान्य लक्षण (चरकानुसार)

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्का श्वासास्यवैरस्यतृषाप्रमोहाः।
छर्दिः कफोत्क्लेशरुजोऽरुचिश्च हृद्रोगजाः स्युर्विविधास्तथाऽन्ये॥

1. विवर्णता 2. मूर्च्छा 3. ज्वर 4. कास 5. हिक्का 6. श्वास 7. मुखविरसता 8. तृष्णा 9. प्रमोह 10. छर्दि 11. कफोत्क्लेश 12. पीड़ा 13. अरुचि ये हृदरोग के सामान्य लक्षण हैं।

भेदानुसार लक्षण

वातज हृद रोग	पित्तज हृद रोग	कफज हृद रोग	सन्निपातज हृदरोग
• हृदय में खिंचावट • तोद • डण्डे से मथने की तरह पीड़ा या दो टुकड़े हो रहे हो ऐसी वेदना या • आरी या कुल्हाड़ी से चीर रहे हो ऐसी वेदना होती है	• तृष्णा • उष्णता • दाह • चोष • हृदय में व्याकुलता • धूम निकलने के समान प्रतीति • मूर्च्छा • स्वेद • मुखशोष	• गुरुता • कफप्रसेक • अरुचि • हृदय में जकड़ाहट • अग्निमांद्य • मुख माधुर्य	•तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण

इनके अलावा आचार्य चरक ने वातिक हृदरोग में हृद कम्पन, मूर्च्छा एवं स्तम्भ ये विशेष लक्षण वर्णित किए है।

कृमिज हृदरोग

आचार्य चरक ने निदान की विशेषता से कृमिज हृदरोग का पृथक एवं विस्तृत वर्णन किया है। यद्यपि यह त्रिदोषज ही होता है अपितु निदान, लक्षण एवं चिकित्सा की विशेषता से इसका पृथक वर्णन प्राप्त होता है।

त्रिदोषज हृदरोग में अपथ्य सेवन करने से तथा उसकी प्रवर्धमान अवस्था को ही कृमिज हृदरोग कहा गया है।

आचार्य चरक ने कहा है–(निदान, सम्प्राप्ति)

त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते। तिलक्षीरगुडादीनि ग्रन्थिस्तस्योपजायते।
मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चास्योगच्छति। संक्लेदात् क्रिमयश्चास्य भवन्त्युपहतात्मनः॥

(च.सू. 17)

अर्थात् त्रिदोषज हृदरोग से ग्रस्त जो व्यक्ति तिल, दूध, गुडादि से निर्मित भोज्य पदार्थों का सेवन करता है उसके हृदय प्रदेश में ग्रंथि की निर्मिती होती है। मर्म प्रदेश में स्थित इस ग्रंथि से रस या क्लेद का स्राव होता है, इस क्लेद में क्रिमियों की उत्पत्ति होकर कृमिज हृदरोग उत्पन्न होता है।

कृमिज हृदरोग के लक्षण

तीव्रार्तितोदं क्रिमिजं सकण्डूम्।

(च.चि. 43)

उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः।
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च क्रिमिजे भवेत्॥

(सु.उ. 43)

1. तीव्र अरति
2. तोद
3. कण्डू
4. उत्क्लेद (बार-बार थूकने की इच्छा)
5. शूल
6. हृल्लास

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

7. तम
8. अरुचि
9. श्यावनेत्रता
10. शोथ

ये लक्षण क्रिमिज हृदरोग में मिलते हैं।

हृदरोगों के उपद्रव

क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुद्रवाः।
क्रिमिजे क्रिमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः॥
(मा. नि.)

1. क्लम
2. अंगसाद (अवसाद)
3. भ्रम
4. शोषण (शोथ)

श्लैष्मिक क्रिमियों के उपद्रव ही क्रिमिज हृदरोग में मिलते हैं।

शोथ

शोथ एवं शोफ शब्द का प्रयोग कई बार पर्याय के तौर पर होता है। श्वयथु शब्द का भी प्रयोग कई बार शोथ के पर्यायी रूप में हुआ है। उपरोक्त तीनों शरीरगत सूजन को दर्शाते हैं और "उत्सेध" इसका प्रत्यात्म लक्षण है। कई आचार्य शोथ एवं शोफ में भेद वर्णित करते हैं। उनके अनुसार जब दोष निज कारणों से प्रकुपित हो तथा उनका आश्रय त्वचा एवं मांस हो एवं उनमें पाक की प्रवृत्ति न हो तो वे "शोथ" कहलाते हैं। जिसे आधुनिक चिकित्साशास्त्र में Oedema के रूप में जाना जाता है। तथा जब दोष आगन्तुक कारणों से उत्पन्न (प्रकुपित) हो, त्वचा, मांस, रक्त आदि अष्ट व्रणवस्तुओं को दूषित करें एवं जिसके पाक की प्रवृत्ति हो उसे "व्रणशोथ" या "शोफ" कहा जाता है इसकी तुलना Inflammation से की जा सकती है।

शोथ के सामान्य निदान

शोथ निज एवं आगन्तुज कारणों से उत्पन्न होते हैं।

निज शोथ के सामान्य निदान

1. जिन व्यक्तियों का शोधन कर्म हुआ हो (पंचकर्म), जो रोगग्रस्त (ज्वर) होने, अभोजन या गुणहीन भोजन से जो व्यक्ति कृश एवं दुर्बल हो गए हो ऐसे व्यक्ति जब क्षार, अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण या गुरु पदार्थों का सेवन करें या
2. दही, अपक्व भोजन, मिट्टी, शाक, विरुद्ध अन्न, दुष्ट भोजन,गर विष का सेवन करता है या
3. अर्श से पीड़ित, निश्चेष्ट, शरीर शुद्धि न करने, मर्म स्थानों में उपघात (विकार) से, विषम प्रसूति से एवं पंचकर्मो (वमन, विरेचनादि) के मिथ्या उपचार से निज शोथ उत्पन्न होता है।

आगन्तुज शोथ के निदान–

1. अभिघात
2. विषाक्त तत्वों का स्पर्श होना
3. शीत वायु का स्पर्श
4. शस्त्रादि से क्षत आदि के कारण

शोथ की सम्प्राप्ति

रक्तपित्तकफान् वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिः सिराः।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यान्त्वङ्मांससंश्रयम्॥
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः।

(माधव)

अपने कारणों से प्रकुपित वायु दूषित रक्त, पित्त एवं कफ को बाह्य (उत्तान) सिराओं में ले जाकर उनसे अवरुद्ध होकर त्वचा एवं मांस के बीच आश्रित होकर रक्तसहित तीनों दोषों के संचय से उत्सेध उत्पन्न करता है उसे शोथ कहते हैं।

शोथ के पूर्वरूप

तत्पूर्वरूपं दवथुः सिरायामोऽङ्गगौरवम्।

(वा.नि. 13)

1. दाह
2. सिरायाम (सिराओं का विस्फार)
3. अंगगौरव

ये शोथ के पूर्वरूप हैं।

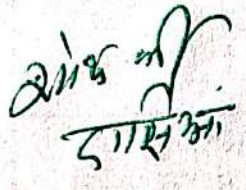

शोथ के सामान्य लक्षण

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ सिरातनुत्वम्।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गश्वयथोः प्रदिष्टम्॥

(च.चि. 12)

1. गुरुता के साथ अस्थिरता
2. उत्सेध (उभार)
3. उष्णता
4. सिराओं की तनुता (पतला होना)
5. लोमहर्ष
6. विवर्णता

ये शोथ के सामान्य लक्षण है।

शोथ के भेद

शोथ के 9 भेद हैं–

1. वातज 2. पितज 3. कफज 4. वातपित्तज 5. वातकफज 6. पित्तकफज 7. त्रिदोषज 8. अभिघातज 9. विषज

निज शोथों के लक्षण

वातज शोथ	पित्तज शोथ	कफज शोथ	द्वंद्वज शोथ	त्रिदोषज शोथ
1. शोथ चंचल होता है	1. शोथ मृदु होता है	1. शोथ में गुरुता स्थिरता	दो-दो दोषों के	तीनों दोषों के सम्मिलित
2. त्वचा पतली होती है	2. गंध युक्त	2. पाण्डुवर्ण का	लक्षण	लक्षण
3. कठोर अरुण या कृष्ण वर्ण होता है।	3. कृष्ण, पीत या रक्त वर्ण का	3. रोगी को आरोचक लालास्त्राव, निद्रा वमन एवं अग्निमांद्य		
4. कभी संज्ञानाश कभी रोमहर्ष होता है।	4. भ्रम, ज्वर, तृषा, मद से पीड़ित	4. शोथ की उत्पत्ति एवं शमन कठिनाई से होती है		
5. अकारण ही शांत हो जाता	5. दाह की विशेषता	5. दबाने पर दबकर जल्दी नहीं उभरता		
6. दबाने पर खड्डा पड़ जाता है तथा छोड़ते ही वापस ठीक हो जाता है।	6. पीड़ा की स्पष्टता	6. रात्रिबली अर्थात् रात में बढ़ने वाला होता है।		
7. दिवाबली अर्थात दिन में बढ़ने वाला रात्री में शांत हो जाता है	7. नेत्रों में लालीमा			
	8. दाह एवं पाक			

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

आगन्तुज शोथ

1.अभिघातज शोथ

निदान

1. शस्त्रादि से छेदन, भेदन
2. क्षत आदि से
3. शीत वायु, समुद्रीवायु के संस्पर्श से
4. भल्लातक के रस के स्पर्श से
5. कपिकच्छु के शूकों के संस्पर्श से

विसर्प की तरह फैलने वाला शोथ उत्पन्न होता है।

लक्षण

1. शोथ वाले प्रदेश में उष्णता
2. रक्त वर्ण का
3. पित्त के लक्षणों वाला

2. विषजन्यशोथ

निदान

1. विषैले प्राणियों के (मकड़ी आदि) शरीर पर चलने, मूत्रत्याग करने आदि से।
2. निर्विष प्राणियों (शेर आदि) के दंश, दंत, नख आदि के आघात से।
3. सविष प्राणियों के मल, मूत्र, शुक्र आदि से संक्रमित वस्त्र के संपर्क से।
4. विषैले वृक्ष की वायु के संस्पर्श से।
5. गर विष के शरीर पर लेपन या अवचूर्णन से विषजन्य शोथ उत्पन्न होता है।

लक्षण

1. शोथ स्पर्श में मृदु
2. चल

आगन्तुज शोथ

1.अभिघातज शोथ

निदान

1. शस्त्रादि से छेदन, भेदन
2. क्षत आदि से
3. शीत वायु, समुद्रीवायु के संस्पर्श से
4. भल्लातक के रस के स्पर्श से
5. कपिकच्छु के शूकों के संस्पर्श से

विसर्प की तरह फैलने वाला शोथ उत्पन्न होता है।

लक्षण

1. शोथ वाले प्रदेश में उष्णता
2. रक्त वर्ण का
3. पित्त के लक्षणों वाला

2. विषजन्यशोथ

निदान

1. विषैले प्राणियों के (मकड़ी आदि) शरीर पर चलने, मूत्रत्याग करने आदि से।
2. निर्विष प्राणियों (शेर आदि) के दंश, दंत, नख आदि के आघात से।
3. सविष प्राणियों के मल, मूत्र, शुक्र आदि से संक्रमित वस्त्र के संपर्क से।
4. विषैले वृक्ष की वायु के संस्पर्श से।
5. गर विष के शरीर पर लेपन या अवचूर्णन से विषजन्य शोथ उत्पन्न होता है।

लक्षण

1. शोथ स्पर्श में मृदु
2. चल

3. नीचे के अंगों में शीघ्र फैलने वाला
4. दाह युक्त एवं
5. रुजाकर होता है।

शोथ का स्थान

आमाशयस्थित दोष–शरीर के उर्ध्वभाग में शोथ उत्पन्न करते हैं।
पक्वाशयस्थित दोष–शरीर के मध्यभाग में शोथ उत्पन्न करते हैं।
गुद प्रदेश में स्थितदोष–शरीर के अधोभाग में शोथ उत्पन्न करते हैं।1
सर्वशरीरगत दोष–संपूर्ण शरीर में शोथ उत्पन्न करते हैं।

शोथ की साध्यासाध्यता

1. शरीर के मध्यभाग एवं संपूर्ण शरीर में होने वाला शोथ कृच्छ्साध्य होता है।
2. अर्धांग में होने वाला एवं उपर की ओर बढ़ने वाला शोथ अरिष्टसूचक होता है तथा असाध्य होता है।
3. जो शोथ रोगी श्वास, तृष्णा, छर्दि, दौर्बल्य, ज्वर से पीड़ित हो तथा जिसे अन्न से अरुचि हो गई हो उसे 'असाध्य' समझकर चिकित्सा न करें।
4. उपद्रवयुक्त शोथ, पुरुषों में पैरों से प्रारम्भ होने वाला, स्त्रियों में मुख से आरम्भ होने वाला एवं दोनों में गुप्तस्थान में होने वाला शोथ मारक होता है।
5. नया एवं उपद्रवरहित शोथ साध्य होता है।
6. कुक्षि, उदर, गल एवं मर्मस्थान में होने वाला शोथ असाध्य होता है।
7. स्थूल एवं खर शोथ भी असाध्य होता है।
8. बालक, वृद्ध एवं दुर्बल व्यक्तियों में होने वाला शोथ भी असाध्य होता है।

शोथ के उपद्रव

आचार्य चरक ने शोथ के निम्न उपद्रव बताए हैं–

छर्दिस्तृष्णाऽरुचिः श्वासों ज्वरोऽतीसार एव च।
सप्तकोऽयं सदौर्बल्यं: शोथोपद्रवसंग्रहः॥

(मा. नि.)

1. छर्दि
2. तृष्णा
3. अरुचि
4. श्वास
5. ज्वर
6. अतिसार
7. दौर्बल्य

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

II रक्तवह स्त्रोतस के रोग

कामला

पाण्डु रोग की ही प्रवर्धमान अवस्था को आचार्य चरक ने कामला माना है। कामला रोग की उत्पत्ति पाण्डु के निदानों के सेवन से बताई गई है। आचार्य चरक ने पाण्डु रोग के साथ ही कामला एवं हलीमक का वर्णन किया है। पांडु एवं कामला दोनों ही व्याधियों का मुख्य लक्षण शरीर के वर्ण का परिवर्तन है। जहाँ पाण्डु में शरीर का वर्ण श्वेत-पीत हो जाता है वहीं कामला में शरीर का वर्ण रक्त-पीत (हारिद्र वर्ण) हो जाता है। हारीत ने तो पाण्डु के भेदों में ही कामला एवं हलीमक का समावेश किया है। किंतु पांडु का अंतर्भाव रसवह स्रोतस की व्याधियों में एवं कामला का समावेश रक्तवह स्त्रोतस की व्याधियों के अंतर्गत किया गया है। दोनों से ही पित्त की दुष्टी मुख्यतया होती है। अतः कामला स्वतंत्र एवं परतंत्र दोनों प्रकार का होता है। पाण्डु रोग के अनंतर होने वाला परतंत्र तथा अपने स्वतंत्र कारणों से होने वाला स्वतंत्र कामला।

कामला के निदान-सम्प्राप्ति-लक्षण-भेद

पांडुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते॥
हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः।
कामला बहुपित्तौष कोष्ठशाखाश्रया मता॥

(च.चि. 16)

उपरोक्त श्लोक में कामला व्याधि का संपूर्ण वर्णन आ गया है।

निदान-सम्प्राप्ति

पांडुग्रस्त रोगी जब अत्यधिक पितवर्धक आहार-विहार का सेवन करता है तब उसका बढ़ा हुआ पित्त और अधिक दूषित होकर रक्त एवं मांस को दूषित (दग्ध) करके कामला व्याधि को उत्पन्न करता है।

लक्षण

- उस रोगी के नेत्र, त्वचा, मुख, हारिद्र (हल्दी) वर्ण के हो जाते हैं।
- मल एवं मूत्र भी रक्तपीत वर्ण के हो जाते हैं।
- शरीर का वर्ण भेकवर्ण (बरसाती मेंढक के समान) हो जाता है।
- इंद्रियों की शक्ति का ह्रास हो जाता है।
- दाह
- अविपाक
- दौर्बल्य
- शरीर में शिथिलता
- अरुचि

उपरोक्त लक्षण मुख्यतया मिलते हैं।

भेद–मुख्य 2 भेद–आश्रय के आधार पर

1. कोष्ठाश्रित
2. शाखाश्रित

निदानों के आधार पर 2 भेद है–

1. स्वतंत्र 2. परतंत्र

कोष्ठाश्रित कामला

जब प्रकुपित दोष (पित्त) कोष्ठ का आश्रय ले रोग उत्पन्न करता है तो वह कोष्ठाश्रित कामला कहलाता है यह पित्त की अत्यंत वृद्धि के कारण उत्पन्न होता है तथा उपरोक्त सामान्य लक्षणों में वर्णित सभी लक्षण कोष्ठाश्रित कामला में मिलते हैं।

शाखाश्रित कामला

जब प्रकुपित दोष शाखा में आश्रित होते है तो वह शाखाश्रित कहलाता है। इसका कारण मुख्यतः स्त्रोतोरोध होता है। कफ द्वारा स्त्रोतोरोध के कारण पित्त

आंत्र में न जाकर शाखाओं में चला जाता है। अतः संपूर्ण शरीर तो पीला हो जाता है परंतु पित्त की अनुपस्थिति से मल का वर्णन धूसर या तिलपिष्ट वत होता है।

तिलपिष्टनिभं यस्तु वर्चः सृजति कामली।
श्लेष्मणा रुद्धमार्गं तं कफपित्तहरैर्जयेत्॥

(च.चि. 16)

तिलपिष्ट के समान मल का त्याग होना शाखाश्रित कामला का मुख्य लक्षण है।

आधुनिक चिकित्साशास्त्र में obstructive Jaundic के साथ इसको correlate किया जाता है, वे भी मल का वर्ण Clay colourd मानते हैं।

कामला के अन्य भेद या अवस्थाएँ

कुम्भकामला

कोष्ठाश्रित कामला की ही प्रवर्धमान अवस्था कुम्भकामला कहलाती है।

कालान्तरात् खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला॥

(च.चि. 16)

अधिक समय व्यतीत हो जाने पर अर्थात् जीर्ण कामला तथा जिसमें धातुओं में रुक्षता उत्पन्न हो गई हो, कुम्भकामला कहलाती है।

आचार्य वाग्भट एवं सुश्रुत ने शोफ यह लक्षण इसमें मुख्य माना है।

उपेक्षया च शोफाढ्या सा कृच्छ्रा कुम्भकामला।

(वाग्भट)

भेदस्तु तस्याः खलु कुम्भसाहवः शोथो महास्तत्र च पर्वभेदः।

(सुश्रुत)

कुम्भकामला की उचित चिकित्सा न होने या उपेक्षा करने पर शोथ उत्पन्न हो जाता है। यह कष्टसाध्य अवस्था है।

हलीमक

कामला रोगी का वर्ण जब हारिद्र न रहकर हरित हो जाए। तब उसे हलीमक कहते हैं। यह कामला की अत्यंत प्रवर्धमान अवस्था है। इसे

शाखाश्रित कामला की जीर्ण अवस्था मान सकते हैं। इसमें रोगी का वर्ण हरा या श्यावपीत हो जाता है। आचार्य सुश्रुत ने इसे लाघरक (लाघवक) या अलसक नाम दिया है। तथा वातएवं पित्त की प्रधानता बताई है। वाग्भट ने इसे लोढर नाम दिया है।

आचार्य चकरानुसार–

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याध्दरितः श्यावपीतकः।
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः॥
स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्द श्च दाहस्तृष्णाऽरुचिर्भ्रमः।
हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः॥

(च.चि. 16)

1. जब पांडुरोगी का वर्ण हरा या श्यावपीत हो जाए।
2. बल एवं उत्साह का नाश हो।
3. तन्द्रा
4. मन्दाग्नि
5. मृदुज्वर
6. स्त्रीरमण की इच्छा का अभाव
7. अंगमर्द
8. दाह
9. तृष्णा
10. अरुचि
11. भ्रम

हलीमक में वात एवं पित्त की अधिकता होती है।

पानकी– [illegible] (जौंडिस) –(Jaundice & diarrhea)

यह भी कामला की ही एक अवस्था है।

सन्तापो भिन्नवर्चस्त्वं बहिरन्तश्च पीतता।
पाण्डुता नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं भवेत्॥

(मा. नि.)

1. सन्ताप

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

2. द्रवमल प्रवृत्ति
3. अंदर एवं बाहर से पीतता
4. किंतु नेत्रों की पांडुता इसके मुख्य लक्षण है।

कामला के असाध्य लक्षण

1. जिस रोगी के मल-मूत्र कृष्णपीत वर्ण के हो।
2. जिसे शोथ हो गया हो।
3. जिसके नेत्र, मुख, वमन, मल, एवं मूत्र ताम्र या रक्तवर्ण के हो गए हो।
4. दाह, अरुचि, तृष्णा, आनाह, तन्द्रा, मोह से ग्रस्त।
5. अग्नि का नाश हो गया हो।
6. संज्ञा या चेतना का नाश हो गया हो।

उसे असाध्य जाने। इसके अलावा कुम्भकामला से पीड़ित जिस रोगी को वमन, अरुचि, हल्लास, ज्वर, क्लम, श्वास, कास, अतिसार-हो गया हो उसे भी असाध्य समझना चाहिए।

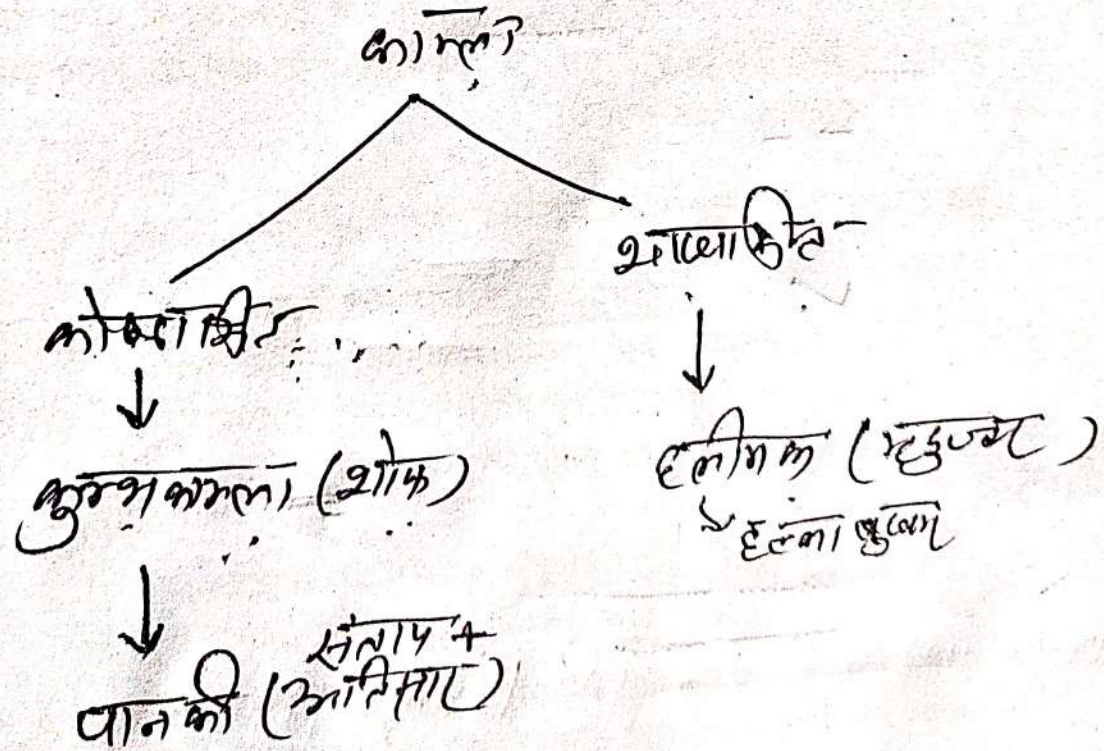

Bleeding Time - 2-7 minut
Clotting time - 2-8 minut

<Ten

रक्तपित्त- रक्तपद
(Bleeding disorder)

दूषित पित्त का प्रवृद्ध रक्त के साथ शरीर से बाहर निकलना रक्तपित्त कहलाता है। शरीर के ऊर्ध्व, अधः या तिर्यक किसी भी मार्ग से इस रक्तपित की प्रवृत्ति हो सकती है। शरीर से निकलने वाला रक्त जीव रक्त है। किसी रक्तस्त्रावी व्याधि के फलस्वरूप है या रक्तपित्त का रक्त है यह जानने हेतु आचार्यों ने परिक्षण बताया है। यदि यह किसी जानवर को डाल दिया जाता है तो जीवरक्त का जानवर भक्षण कर लेता है किंतु रक्तपित्त का हो तो भक्षण नहीं करेगा। इसी तरह जीवरक्त से दूषित वस्त्र धोने पर पूर्णतया साफ हो जाएगा किंतु रक्तपित्त से दूषित वस्त्र के धोने पर भी दाग नहीं जाते अतः रक्तपित्त में पित्त द्वारा रक्त की दुष्टि अत्यन्त होती है। रक्तपित्त के नामकरण के विषय में आचार्य चरक ने कहा है–

संयोगाद् दूषणात्तु सामान्याद् गन्धवर्णयोः।
रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभिः॥

(च.चि. 4)

अर्थात् पित्त एवं रक्त के संयोग के कारण पित्त द्वारा रक्त के दूषित होने के कारण एवं पित्त एवं रक्त के गंध एवं वर्ण में समानता होने के कारण इस रोग का नाम 'रक्तपित्त' रखा गया है।

रक्तपित्त की निदान-सम्प्राप्ति

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः।
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च॥
पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम्।
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि व॥

(सु.उ. 45)

उर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते॥

निदान–1. आतप सेवन 2. व्यायाम 3. शोक 4. अधिक पैदल चलने 5. अति व्यवाय 6. तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार, लवण, अम्ल एवं कटुरसात्मक पदार्थों के अत्यधि

क सेवन से।

सम्प्राप्ति–उपरोक्त निदानों के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर अपने गुणों से रक्त को विदग्ध करके, रक्त के साथ मिलकर शरीर के उर्ध्व मार्ग, अधोमार्ग या कभी-कभी दोनों मार्गों से निकलने लगता है।

उर्ध्व मार्ग है–नासा, अक्षि, कर्ण, मुख एवं

अधो मार्ग है–मेढ्र (मूत्रेन्द्रिय) योनि, गुदा

अत्यंत कुपित होकर कभी-कभी रोमकूपों से भी रक्तस्त्राव होने लगता है। इसे तियक् गति या आंतिकी कहा गया है।

रक्तपित्त के पूर्वरूप

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः।
लोहगन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति॥

(सु.उ. 45)

1. अंगसाद 2. शीतल पदार्थों के सेवन की इच्छा 3. कण्ठ से धूम निकलने की प्रतिती 4. वमन 5. निःश्वास में लोहे की गंध आना ये रक्तपित्त के पूर्वरूप है।

आचार्यचरक एवं वाग्भट ने मत्स्यगंधता को रक्तपित्त के पूर्वरूप में माना है।

रक्तपित्त के भेद– 2

दोषानुसार रक्तपित्त के 7 भेद है–

1. वातिक 2. पैत्तिक 3. कफज 4. वातपितज 5. पित्तकफज 6. वातकफज 7. सन्निपातिक

मार्गानुसार रक्तपित्त के 3 भेद है–

1. उर्ध्वग रक्तपित्त
2. अधोग रक्तपित्त
3. उभयग रक्तपित्त

रक्तपित्त management Protocol- परिमार्ग चिकि

रक्तपित्त के दोषानुसार लक्षण

वातिक रक्तपित्त	पैत्तिक रक्तपित्त	कफज रक्तपित्त	संसर्गज रक्तपित्त	सन्निपातज रक्तपित्त
रक्तस्त्राव का वर्ण श्याव, अरुण वर्ण का फेन युक्त (झागवाला) पतला एवं रुक्ष होता है।	रक्तस्त्राव का वर्ण क्वाथ के समान वर्ण का या काला या गोमूत्र के वर्ण का, स्निग्धता युक्त, गृहधूम या अंजन सदृश कृष्ण वर्ण होता है।	रक्तस्त्राव घना पाण्डुवर्ण का स्निग्धता युक्त, एवं पिच्छिल होता है।	दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं।	तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं।

मार्गानुसार रक्तपित्त में दोषों का संसर्ग

उर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं पवनानुगम्।
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते।।

(च.चि. 4)

उर्ध्वग रक्तपित्त में कफ का अनुबंध रहता है।

अधोग रक्तपित्त में वात का अनुबंध रहता है एवं उभयग रक्तपित्त में वात एवं कफ दोनों का संसर्ग रहता है।

चिकित्सा की विशेषता के कारण रक्तपित्त का मार्गानुसार वर्गीकरण किया गया है। अर्ध्वग रक्तपित्त की विरेचन द्वारा चिकित्सा, अधोगरक्तपित्त की वमन द्वारा चिकित्सा की जाती है।

"प्रतिमार्गं च हरणं रक्तपित्ते विधीयते।"

अतः साध्यासाध्यता की दृष्टि से भी कहा गया है कि–

उर्ध्वंसाध्यमधोमाप्यमसाध्यं युगपद्वयम्।।

(सु.उ. 45)

उर्ध्वग रक्तपित्त साध्य होता है क्योंकि विरेचन द्वारा पित्त का शोधन हो जाता है तथा कषाय एवं तिक्त रसात्मक द्रव्यों से कफ एवं पित्त का शमन होता है। अधोग याप्य होता है–क्योंकि इसमें वात एवं पित्त दोनों होते हैं तथा वमन द्वारा दोनों की चिकित्सा से अधिक लाभ नहीं होता तथा केवल मात्र मधुर रस ही ऐसा है जो वात एवं पित्त का शमनकर सकें।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

उभयग रक्तपित्त असाध्य माना गया है क्योंकि पित्त के साथ इसमें वात एवं कफ की भी अधिकता होती है, किसी भी मार्ग से संशोधन नहीं कराया जा सकता तथा विरुध्दोपक्रम होने से असाध्य माना गया है। वातकी चिकित्सा करने पर कफ की वृद्धि एवं कफ की चिकित्सा करने से वात की वृद्धि होने की संभावना रहती है।

रक्तपित्त की साध्यासाध्यता

मार्गानुसार– 1. उर्ध्वग–साध्य
2. अधोग–याप्य
3. उभयग–असाध्य

दोषानुसार– 1. एकदोषज–साध्य
2. द्विदोषज–याप्य
3. त्रिदोषज–असाध्य

साध्य रक्तपित्त–बलवान व्यक्ति में, एक मार्ग (उर्ध्व) वाला, अल्पवेग वाला, नया, अनुकूल काल में उत्पन्न, उपद्रवरहित साध्य होता है।

असाध्य रक्तपित्त–मन्दाग्निवाले व्यक्ति में, अतिवेगयुक्त, व्याधि से क्षीण व्यक्ति में, वृद्ध तथा अनशन करने वाले व्यक्ति का रक्तपित्त असाध्य होता है। उपद्रवयुक्त रक्तपित्त भी असाध्य होता है।

स्वरूप के अनुसार असाध्यता–मांसप्रक्षालित जल के समान वर्ण वाला सड़न युक्त दुर्गंध वाला, किचड़ मिश्रित जल के सदृश मेद या पूय मिश्रित रक्त के सदृश, यकृत या पकी हुई जामुन के समान वर्ण वाला, अत्यन्त कृष्णवर्ण या नीलावर्ण वाला, शव के समान दुर्गंध युक्त, इन्द्रधनुष के समान विभिन्न वर्णों वाला तथा उपद्रवयुक्त रक्त पित्त असाध्य होता है।

अरिष्ट लक्षण– 1. जो रोगी सभी वस्तुओं को रक्तवर्ण का देखे।
2. पुनः पुनः रक्त का वमन करें।
3. नेत्र लाल हो गए हो।
4. रक्त की गंध से युक्त बार-बार उद्‌गार प्रवृत्ति हो।

उपद्रव–1. दुर्बलता 2. श्वास 3. कास 4. ज्वर 5. वमन 6. मद 7. पांडु 8. दाह 9. मुर्च्छा 10. खाए हुए भोजन का घोर विदाह 11. अधीरता 12. हृदय में पीड़ा 13. तृष्णा 14. अतिसार 15. सिर में ताप 16. दुर्गंधित थूक 17. भक्तद्वेष 18. अविपाक।

वातरक्त

आचार्य सुश्रुत ने वातरक्त का वर्णन वातव्याधियों के प्रकरण में ही कर दिया है, जबकि आचार्य चरक ने इसका पृथक् वर्णन किया है। माधव निदान में भी वातव्याधि प्रकरण के पश्चात् वातरक्त का पृथक अध्याय में वर्णन प्राप्त होता है। निदानों की विशेषता, रक्तदृष्टि की प्रबलता एवं चिकित्सा वैशिष्टय के कारण वातव्याधि से इसकी पृथकता उचित है।

पर्याय–आचार्य चरक ने इसके आढयवात एवं वातबलास, खुड्डवात ये पर्याय बताए हैं।

"खुड्डं वातबलासाख्यमाढयवातं च नामभिः।

(च.चि. 29)

आढयवात–धनवान व्यक्तियों में प्रायः होने के कारण।

वातबलास–वात के आवृत होने से वायु के बल के कारण रक्त की अधिक दूष्टि होने से।

खुड्डवात–छोटी संधियों में विशेषतः होने के कारण

आचार्य चरकानुसार–

वायुः प्रवृद्धो वृद्धेन रक्तेनावारितः पथि।
क्रुद्धः संदूषयेद्द्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम्॥

निदान

वात एवं रक्त दोनों की दुष्टि इस रोग में होती है। अतः वातप्रकोपक एवं रक्तदूषक आहार-विहार इसके मुख्य निदान है।

1. लवण, अम्ल, कटु, क्षार, स्निग्ध, उष्ण पदार्थों का सेवन
2. अजीर्ण में भोजन करना
3. क्लिन्न, शुष्क मांस, जल जन्तु, आनूपमांस का सेवन
4. तिल की खली, मूली, कुलत्थ, उड़द, सेम के शाक, गन्ने का सेवन
5. दही, कांजी, सौवीर (सिरका), शुक्त, तक्र, सुरा, आसवों का प्रयोग
6. विरुध्दाशन, अध्यशन
7. क्रोध, दिवास्वाप, रात्रिजागरण

8. प्रायशः सुकुमार प्रकृति के, स्थूल एवं सुखी व्यक्तियों में उपरोक्त निदानों के सेवन से वात एवं रक्त-कुपित होकर वातरक्त को उत्पन्न करते हैं।

सम्प्राप्ति

आचार्य सुश्रुत ने निदानपूर्वक विशिष्ट सम्प्राप्ति का वर्णन किया है, जिसमें वातप्रकोपक एवं रक्तदुष्टिकारक निदान बताए है–

हाथी, घोड़े, ऊँट आदि की सवारी (वात प्रकोपक) करने तथा विदाही अन्न का सेवन करने (रक्तदूषक) से भोजन का पाक विदग्ध होकर रक्त को भी विदग्ध या दूषित कर देता है, यह दूषित रक्त नीचे पैरों में खिसककर एकत्र हो जाता है तथा वातप्रकोपक सवारी के कारण प्रकुपित हुए वायु के साथ मिलकर वातरक्त को उत्पन्न करता है।

पूर्वरूप

1. अतिस्वेद प्रवृत्ति या स्वेद का बिलकुल न आना
2. शरीर की कृष्ण वर्णता
3. स्पर्श ज्ञान न होना
4. क्षतस्थान में अत्यधिक वेदना होना
5. सन्धियों में शिथिलता
6. आलस्य
7. शरीर में अवसाद
8. जानु, जंघा, उरु, कटि, अंस, हस्त, पाद आदि की संधियों में पिड़िकाओं की उत्पत्ति तथा उनमें तोद, स्फुरण, भेद, गुरुता, सुप्ति, कण्डु होना।
9. संधियों में वेदना हो होकर नष्ट हो जाना।
10. त्वचा की विवर्णता एवं त्वचा पर मण्डलों (चकत्तों) की उत्पत्ति ये वातरक्त के पूर्वरूप है।

लक्षण–भेदानुसार बताए है।

भेद–दोषानुसार–अष्टविध भेद–1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. रक्तज 5. वातपितज 6. पित्तकफज 7. वातकफज 8. सन्निपातज

आश्रयानुसार–द्विविध भेद–1. उत्तान वातरक्त 2. गंभीर वातरक्त

वातरक्त के दोषानुसार लक्षण

वातज वातरक्त	पित्तत वातरक्त	रक्तज वातरक्त	कफज वातरक्त	संसर्गज वातरक्त	सन्निपातज वातरक्त
शूल, स्फुरण, भंजन, शोथ, रुक्षता, कृष्णता श्यावता, लक्षणों की कभी वृद्धि कभी ह्रास, धमनी, अंगुली संधियों में जकड़ाहट, अत्यधिक वेदना, शीत से द्वेष एवं शीतल पदार्थों के सेवन से अनुपशय, शरीर में जकड़ाहट कंपन एवं सुप्ति	दाह, मोह, स्वेद, मूर्च्छा, मद, तृष्णा स्पर्शासह्यता वेदना विकृत स्थान पर लालीमा, शोथ, पाक एवं उष्णता	शोथ, अत्यधिक वेदना, तोद, लालीमा, चिमचिमायन, स्निग्ध एवं रुक्ष किसी से भी उपशय नहीं, कण्डू एवं क्लेद की अधिकता	स्तिमितता, गुरुता, सुप्तता, स्निग्धता, शीतता, कण्डू, मंद वेदना	दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण	तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण

आचार्य चरक ने वातरक्त के **उत्तान** एवं **गंभीर** ऐसे दो भेद किए हैं–

उत्तानमथ गम्भीरं द्विविधं तत्प्रचक्षते।
त्वङमांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम्॥

उत्तान वातरक्त	गंभीर वातरक्त
त्वचा के आश्रित त्वचा में कण्डू, दाह, लालिमा, आयास, तोद, स्फुरण, भंजन तथा पीडिकाओं की उत्पत्ति। ये श्याव, रक्त या ताम्रवर्ण की होती है।	**संधियों में आश्रित** संधियों में शोथ, जकड़ाहट, अत्यंत भयंकर आंतरिक पीड़ा, आक्रांत संधि के उपर की त्वचा श्याव या ताम्र वर्ण की दाह, तोद, स्फुरण पाक, प्रकुपित वायु संधि, अस्थि, मज्जा में जाकर अंगों को टेढ़ा कर खंजता या पंगुता उत्पन्न करता है।

उत्तान वातरक्त आगे जाकर गंभीर वातरक्त में परिवर्तित हो सकता है। तथा सभी धातुएँ आक्रान्त हो सकती है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

वातरक्त का प्रसरण

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि।
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमुपसर्पति॥

(सु.नि. 1)

पाद या हस्त के अंगुष्ठ मूल से शुरू होकर चूहे के विष के समान संपूर्ण शरीर में इसका धीरे-धीरे प्रसारण होता है।

साध्यासाध्यता

एकदोषज, नवीन, उपद्रवरहित–साध्य
द्विदोषज, अल्प उपद्रवयुक्त–याप्य
त्रिदोषज, उपद्रवयुक्त–असाध्य

असाध्य लक्षण

1. जो रोग अंगूठे से प्रारंभ होकर जानु तक पहुँच गया हो।
2. त्वचा गल गई हो, त्वचा के विदीर्ण होने से उसमें से स्त्राव निकलता हो।
3. प्राणक्षय एवं मांसक्षय कराने वाले उपद्रवों से युक्त

याप्य–एक वर्ष पुराना याप्य होता है।

उपद्रव

1. निद्रानाश, 2. अरुचि, 3. श्वास, 4. मांसकोथ, 5. शिरोग्रह, 6. मूर्च्छा, 7. मद, 8. वेदना 9. तोद, 10. भ्रम 11. क्लम 12. अंगुलीवक्रता 13. स्फोट 14. दाह 15. मर्मग्रह (विकार) 16. अर्बुद

उपरोक्त उपद्रव उत्पन्न होने पर रोग असाध्य हो जाता है।

महाकुष्ठ

प्राय: सभी त्वगगत रोगों की गणना कुष्ठ के अंतर्गत की गई है। सुश्रुत ने तो कुष्ठ रोग के लिए "त्वगामय" शब्द का प्रयोग किया है। अत: सभी त्वक् विकार कुष्ठ कहलाते हैं एवं सभी में रक्तदूष्टि मिलती है।

निदान एवं चिकित्सा सौकर्य की दृष्टि से इन कुष्ठों को आचार्यों ने महाकुष्ठ एवं क्षुद्रकुष्ठों में वर्गीकृत किया है। जिन कुष्ठों में लक्षणों की अधिकता, दोषों की प्रबलता, रोग की तीव्रता अधिक होती है, चिकित्सा जटील हो, रोग चिरकालीन हो उन्हें महाकुष्ठ की श्रेणी में लिया गया है, इसके विपरीत अल्प कारणों से होने वाले, अल्पदोष वाले, मृदु लक्षणों वाले जो अधिक कष्टदायक न हो उन्हें क्षुद्रकुष्ठों के अंतर्गत लिया है।

आचार्य सुश्रुत एवं माधव ने सप्त महाकुष्ठ माने हैं तथा ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ बताए है। कुल संख्या कुष्ठों की अठारह बताई गई है। आचार्य चरक ने तो कुष्ठों को असंख्य बताया है।

कुष्ठ शब्द की व्युत्पत्ति

"कुष्णातीति कुष्ठम्"

'कुष्णाति नि:शेषेण कर्षति विलेखनं करोति अंग प्रत्यंगानि धातूपधातुनिति कुष्ठ:'।

शरीर की धातुओं का नाश करने के कारण इसे कुष्ठ कहा गया है।

जो निश्चित रूप से शरीर के अंग-प्रत्यंग धातु उपधातुओं का कर्षण करे, नाश करे उसे कुष्ठ कहते हैं।

कुष्ठ के निदान

1. विरुद्ध अन्नापान का सेवन करने से
2. द्रव, गुरु एवं स्निग्ध पदार्थों का सेवन करने
3. वमन आदि वेगों को रोकने से
4. अति भोजन के पश्चात् व्यायाम एवं आतप सेवन से
5. धूप, श्रम एवं भय पीड़ित द्वारा शीघ्रता से ठंडा पानी पीने से
6. अजीर्ण एवं अध्यशन से
7. पंचकर्म के दौरान अपचार (अपथ्य) करने से
8. नया अनाज, दही, मछली अति लवण, अम्ल पदार्थों के सेवन से

9. उड़द, आलू, पिष्ठान्न, तिल, दूध, गुड़ आदि के एक साथ सेवन से
10. भोजन के बीना पचे अति मैथुन एवं दिवास्वाप करने से
11. ब्राह्मण, गुरु आदि का तिरस्कार एवं पापकर्म करने से

सम्प्राप्ति–उपरोक्त निदानों के सेवन से वातादि तीनों दोष प्रकुपित होकर त्वचा, रक्त, मांस, शरीरस्थ जलीय धातु (अम्बु) को दूषित करके ये सात कुष्ठों को उत्पन्न करते हैं। जिससे सप्तविध एवं एकादश कुष्ठ उत्पन्न होते हैं।

वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च।
दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः।
अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैवच॥

(च.चि.7)

कुष्ठ के पूर्वरूप

अतिश्लक्ष्णाखरस्पर्श स्वेदास्वेदविवर्णताः।
दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिर्भ्रमः॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः।
रूढानामपि रुक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽतिकोपनम्॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम्॥

(वा.नि. 14)

1. त्वचा का अतिस्निग्ध होना या रुक्ष (खर) होना
2. अतिस्वेद प्रवृत्ति या अस्वेद
3. विवर्णता
4. दाह, कण्डू, सुप्ति, तोद, कोठ (चकत्ते)
5. भ्रम
6. व्रणों की शीघ्र उत्पत्ति एवं देर तक स्थिति
7. उनमें अत्यंत पीड़ा
8. व्रण रोपण के उपरांत भी उसमें रुक्षता एवं साधारण कारण से उपस्थित हो जाने पर उनकी वृद्धि
9. रोमहर्ष
10. रक्त का कृष्ण वर्ण का हो जाना

ये कुष्ठ के पूर्वरूप है।

सप्तविध महाकुष्ठ

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः।
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः॥

(वा.नि. 14)

1. वातज 2. पित्तज 3. कफज-एक दोषज 4. वातपित्तज 5. पित्तकफज 6. वातककफज-संसर्ग 7. सन्निपातज-ऐसे सप्त भेद

सप्त महाकुष्ठों के लक्षण

1. **वातज (कपाल) कुष्ठ**–कपाल सदृश कृष्ण या रक्तवर्ण का, रुक्ष, कठोर, पतली त्वचा वाला, तोदयुक्त कुष्ठ कपाल कहलाता है। इसमें वातदोष का आधिक्य होता है। यह विषमाकृति एवं कष्ट साध्य होता है।
2. **पित्तज (औदुम्बर) कुष्ठ**–पित्त की अधिकता से, उदुम्बर फल सदृश कपिलवर्ण के रोमयुक्त, वेदना, दाह, लालीमा, कण्डू युक्त।
3. **कफज (मण्डल) कुष्ठ**–कफ की अधिकता से, श्वेत या रक्तवर्ण का स्थिर, आर्द्र, स्निग्ध, उठे हुए तथा एक दूसरे से मिले हुए चकत्ते मंडल कहलाते हैं ये कष्टसाध्य होते हैं।
4. **वातपित्तज (ऋष्यजिह्व) कुष्ठ**–ऋष्यजिह्वं अर्थात् हिरण की जिह्वां के सदृश, कठोर, किनारों पर रक्तवर्ण एवं बीच में श्याम वर्ण, वेदनायुक्त ऋष्णजिह्वं कहलाता है।
5. **पित्तकफज (पुण्डरीक) कुष्ठ**–पुण्डरीक अर्थात् कमल की पंखुड़ियों के सदृश श्वेत एवं लाल किनारों वाला उन्नत एवं मध्य में श्वेतरक्त कुष्ठ जो रक्तकमल के जैसा दिखता हो पुण्डरीक कहलाता है।
6. **वातकफज (सिध्म) कुष्ठ**–श्वेत या ताम्र वर्ण का, रगड़ने से जिसमें से धूलि निकलती हो, लौकी (अलाबू) के फूल के सदृश-कुष्ठ सिध्म कहलाता है, यह प्रायः उर स्थान पर होता है।
7. **सन्निपातज (काकणक) कुष्ठ**–काकणक अर्थात् गुंजा सदृश। यह गुंजा सदृश मध्य में कृष्ण और किनारों पर रक्त या मध्य में रक्त और किनारों पर कृष्ण वर्ण वाला, पाकयुक्त, तीव्रवेदना वाला, त्रिदोषज एवं असाध्य होता है।

सुश्रुतोक्त महाकुष्ठों के नाम इस प्रकार हैं–

1. अरुण 2. उदुम्बर 3. ऋष्यजिह्वं 4. कपाल 5. काकणक 6. पुंडरिक 7. दद्रु

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

दोषानुसार कुष्ठ के लक्षण

वातज कुष्ठ	पित्तज कुष्ठ	कफज कुष्ठ	द्वन्द्वज कुष्ठ	सन्निपातज कुष्ठ
खरस्पर्श वाला, श्याव, अरुण वर्णवाला, रुक्ष, वेदनायुक्त	उबलते हुए जल के समान पीड़ा, दाह, लालीमा, स्त्राव	क्लेद युक्त घन, स्निग्ध कण्डू शीतता गुरुता-युक्त	दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण	तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण

कुष्ठ की साध्यासाध्यता

साध्य – त्वचा, रक्त, मांस स्थित
– वात एवं कफ की अधिकता वाला

याप्य – मेदोगत
द्वन्द्वज

असाध्य – अस्थि एवं मज्जागत
त्रिदोषज
जिसमें कृमि उत्पन्न हो गए हो
तृष्णा, दाह, मंदाग्नि से पीड़ित
जिसका शरीर फट गया हो
अंग गलने (सड़ने) लगे हो
नेत्र रक्तवर्ण के
स्वरनाश हो गया हो
पंचकर्म गुणातीत हो

कुष्ठ की संक्रामकता

प्रसङ्गादात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात्।
एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात्।।
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्।। (सु.नि. 5)

सुश्रुत ने कुष्ठ को संक्रामक रोग माना है, यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में 1. मैथुन द्वारा 2. शरीर के स्पर्श से 3. निःश्वास से 4. एकसाथ भोजन करने 5. एक शय्या एवं आसन के प्रयोग से 6. रोगी द्वारा पहने गए वस्त्र, माला, अनुलेप आदि के सेवन से फैलता है।

सप्तधातुगत कुष्ठ-लक्षण

आचार्यों ने सप्तधातुगत कुष्ठों के लक्षण बताए हैं।

त्वक्गत	रक्तगत	मांसगत	मेदोगत	अस्थिगत मज्जागत	शुक्रगत
त्वचा में विवर्णता, रुक्षता, सुन्नता, रोम, हर्ष, स्वेद की अधिकता होती है।	कण्डू, दुर्गंधित पूय की विशेषता।	स्थूलता (बाहुल्य), मुख शोष, कर्कशता, पिड़काओं की उत्पत्ति, तोद, स्फोट, स्थिरता।	अंगों का गलकर गिरना, गति में असमर्थता, वेदना, घाव का फैलना।	नासिका का बैठ जाना, नेत्रों में लालिमा, क्षतस्थान में कृमि की उत्पत्ति, स्वर नाश।	कुष्ठ से पीड़ित स्त्री या पुरुष के रस या वीर्य के संयोग से उत्पन्न संतान भी कुष्ठि होती है। उसे कुष्ठित कहते हैं। कूर्पर संधि के नीचे का भाग निश्चेष्ट हो जाता है, भेदनवत पीड़ा, व्रण का फैलना गतिक्षय।

कुष्ठ में कृमि उत्पत्ति

समय रहते कुष्ठ की चिकित्सा न कि जाए तो समस्त धातुएँ आक्रांत होकर कोथ उत्पन्न हो जाता है तथा स्वेद, क्लेद एवं कोथयुक्त कुष्ठ में कृमियों की उत्पत्ति हो जाती है। इसमें कृमियों द्वारा रोम, त्वचा, स्नायु, धमनी एवं तरुणास्थियों का भक्षण होता है। तथा उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

उपद्रव–कृमियों द्वारा धातुओं के भक्षण के उपरांत–स्त्राव, अंगभेद, अंगों का गलना, तृष्णा, ज्वर, अतिसार, दाह, दुर्बलता, अरुचि, अपचन ये उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

क्षुद्रकुष्ठ

आचार्यों ने एकादश क्षुद्रकुष्ठ बताएँ है।

चरकोक्त	सुश्रुतोक्त
1. एक कुष्ठ	1. स्थूलारूष्क
2. किटिभ	2. महाकुष्ठ
3. अलस	3. एककुष्ठ
4. चर्मदल	4. चर्मदल
5. विस्फोटक	5. विसर्प
6. विचर्चिका	6. परिसर्प
7. चर्माख्य	7. सिध्म
8. विपादिका	8. विचर्चिका
9. दद्रु	9. पामा
10. पामा	10. किटिभ
11. शतारु	11. रकसा

दोष प्राधान्य

वात + कफ–चर्माख्या, एककुष्ठ, किटिभ, विपादिका, अलसक
पित्त + कफ–पामा, शतारु, विस्फोटक, दद्रु, चर्मदल
कफज–विचर्चिका

क्षुद्रकुष्ठों के लक्षण

1. **एककुष्ठ**–स्वेदरहित, विस्तृत, मछली की त्वचा के सदृश (कृष्ण वर्ण) Erythrodermias.
2. **चर्मकुष्ठ**–हाथी की त्वचा के समान मोटी त्वचा वाला Xeroderma Pigmentosa.
3. **किटिभ**–श्याववर्ण का, व्रणस्थान पर खर स्पर्शवाला, कठोर (Psoriasis)
4. **वैपादिक**–तीव्र वेदनायुक्त हस्त-पाद का फटना (Rhagades)
5. **अलसक**–कण्डु एवं रक्तवर्ण के फोड़ों से युक्त मण्डल (Lichen)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

6. **दद्रु**–कण्डुयुक्त, रक्तवर्ण की पीडिकाओं से युक्त उभरे हुए मण्डल (Ringworm)
7. **चर्मदल**–रक्तवर्ण का शूल, कण्डू तथा स्फोटों से युक्त, फटकर न झड़ने वाला, स्पर्श को न सहने वाला (Ex Coriation)
8. **पामा**–छोटी-छोटी बहुत सी पीड़िकाओं से युक्त जिनसे स्त्राव निकलता है, कण्डु एवं दाह युक्त (Scabies)
9. **कच्छु**–उपरोक्त पिडिकाएँ ही जब तीव्र दाह युक्त-फफोलों के साथ हस्त एवं नितम्ब प्रदेश में होती है उन्हें कच्छु कहते हैं।
10. **विस्फोट**–श्याव या अरुण वर्ण के, पतली त्वचा वाले स्फोटों को विस्फोट कहते हैं (Bullae)
11. **शतारु**–रक्त, श्याव वर्ण के, दाह युक्त, अनेक व्रणों वाले कुष्ठ को शतारु कहते हैं। (Erythemas)
12. **विचर्चिका**–कण्डूयुक्त, श्याववर्ण के, बहुतस्त्राव युक्त पिडिकाओं (के मण्डल) को विचर्चिका कहते हैं। (Eczema).

सुश्रुतोक्त कुष्ठ

अरुणकुष्ठ–वात की अधिकता से, अरुणवर्ण का, पतली त्वचा वाला, फैलने वाला, तोदयुक्त एवं सुन्नतायुक्त कुष्ठ अरुण कुष्ठ कहलाता है।

स्थूलारुष्क–संधिस्थानों में होने वाला स्थूल एवं कठिन व्रण, जो अत्यंत दारुण होता है, स्थूलारुष्क कहलाता है।

महाकुष्ठ–त्वचा के संकोच से युक्त, संज्ञानाश एवं ग्लानि युक्त कुष्ठ महाकुष्ठ कहलाता है।

विसर्प–त्वचा, रक्त एवं मांस को दूषित करके शीघ्र फैलने वाला कुष्ठ विसर्प कहलाता है। इसमें मूर्च्छा, दाह, बेचैनी, वेदना एवं पाक होता है।

परिसर्प–स्त्राव युक्त पीडिकाओं का शरीर में धीरे-धीरे फैलना परिसर्प कहलाता है।

रकसा–स्त्रावरहित एवं कण्डुयुक्त पिडिकाएँ रकसा कहलाती है।

श्वित्र

श्वित्र को ही किलास या वारुण भी कहा गया है। आमभाषा में जिसे श्वेतकुष्ठ या Leucoderma कहते हैं।

इसके उत्पादक कारण कुष्ठ के ही समान है। अर्थात् वातादि तीनों दोषों एवं रक्त, मांस एवं मेद की दुष्टि से उत्पन्न होता है। इसमें कोई आभ्यांतर विकृति नहीं होती केवल बाह्यविकृति ही होती है। तथा औपसर्गिक रोग भी नहीं है।

निदान–कुष्ठ के समान

पूर्वरूप–कुष्ठ के समान

सम्प्राप्ति–हारित के अनुसार

वायु की प्रेरणा से प्रकुपित पित्त त्वचा में जाकर रक्त के साथ मिलकर त्वचा को पाण्डूवर्ण का कर देता है इसे श्वित्र कहते हैं।

भेदानुसार लक्षण

वातिक किलास–रुक्ष एवं अरुण वर्ण का

पैत्तिक किलास–कमलपत्र सदृश, ताम्र वर्ण का एवं दाहयुक्त

कफज किलास–श्वेतवर्ण, घन, गुरु, कण्डु युक्त

भालुकी ने किलास की धातुगत अवस्थाओं का वर्णन किया है।

रक्तधातुगत किलास रक्त वर्ण का (अरुण) होता है, इसे दारुण कहा गया है।

मांसधातुगत किलास ताम्रवर्ण का होता है, उसे वारुण कहा गया है।

मेदधातुगत किलास श्वेतवर्ण का होता है, इसे श्वित्र कहा गया है।

अन्य भेद

1. व्रणज एवं 2. दोषज भेद से भी यह दो प्रकार का होता है।

दोषज भी 1. आत्मज एवं 2. परज भेद से दो प्रकार का होता है।

1. सहज एवं 2. जन्मोत्तर कालज भेद से भी दो प्रकार का होता है।

किलास की साध्यासाध्यता

साध्य 1. जिस किलास के मण्डलों के बाल (रोम) सफेद न हुए हो।
2. अल्प संख्या में हो
3. आपस में मिले हुए न हो
4. नया हो
5. आग से जलने से उत्पन्न न हुआ हो।
6. गम्भीर धातुओं में आश्रित न हो।

असाध्य–उपरोक्त लक्षणों के विपरित लक्षणों वाला–गुप्तस्थान, हस्त-पाद के तलवों एवं ओष्ठ में होने वाला नया किलास भी असाध्य होता है।

विसर्प

संपूर्ण शरीर में शीघ्र फैलने की प्रवृत्ति के कारण इसे विसर्प कहा गया है।

"सर्वतो विसर्पणाद् विसर्पः।"

सर्वत्र फैलने की प्रवृत्ति के कारण विसर्प कहलाता है।
आचार्य चरक ने कहा है–

"विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।
परिसर्पोऽथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात्॥"

(च.चि. 21)

विविध प्रकार से शरीर में गति करने के कारण इसे विसर्प कहा गया है तथा इसी का भेद या पर्याय परिसर्प भी कहा गया है। सर्वत्र परिसर्पण के कारण परिसर्प कहलाता है।

इस रोग में संपूर्ण शरीर में रक्तवर्ण के शोथयुक्त मंडल उत्पन्न हो जाते है। एवं ये शीघ्र ही प्रसरणशील होते है।

कुष्ठ की तरह इसमें सप्त दोष-दूष्य संग्रह मिलता है–

रक्तं लसीका त्वङ्मांस दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः।
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः॥

(च.चि. 21)

रक्त, लसीका, त्वचा एवं मांस ये चार दूष्य एवं वात, पित्त एवं कफ ये तीन दोष मिलकर विसर्प की उत्पत्ति करते हैं।

विसर्प के निदान

1. लवण, अम्ल, कटू, उष्ण आदि पदार्थों का अतिसेवन
2. दही, तक्र, किलाट आदि का सेवन
3. सुरा, सौवीरक, मद्य, लहसून, विदाही शाक (सरसों आदि) का सेवन
4. क्षत, आघात, वेधन, विष आदि के कारण

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

सम्प्राप्ति

उपरोक्त निदानों के सेवन से प्रकुषित-दोष रक्त, त्वचा, मांस एवं लसीका को दूषित कर त्वचा में आश्रित हो विसपर्णशील मण्डलो को उत्पन्न करते हैं, इन्हें विसर्प कहते हैं।

भेद

आचार्य चरक ने दोषानुसार सप्त भेद किए है–

1. वातज
2. पित्तज
3. कफज
4. वात पित्तज (अग्नि विसर्प)
5. पित्तकफज (कर्दम विसर्प)
6. कफवातज (ग्रंथि विसर्प)
7. सन्निपातज

आचार्य सुश्रुत ने पाँच भेद बताए हैं–

1. वातज
2. पितज
3. कफज
4. सन्निपातज
5. क्षतज

वातपित्तज (अग्नि विसर्प)	पित्तकफज (कर्दम विसर्प)	कफवातज (ग्रंथिक विसर्प)
1. ज्वर, वमन, मूर्छा, अतिसार, तृष्णा, भ्रम 2. ग्रंथि या संधियों में भेदनवत पीड़ा, 3. अग्निमांद्य, 4. तम, 5. अरोचक, 6. संपूर्ण शरीर जलते हुए अंगारों से झुलसे हुए की तरह प्रतीत होता है। 7. जो-जो स्थान विसर्प ग्रस्त हो जाता है वह बुझे हुए अंगारे के समान कृष्ण, नील या रक्त	1. ज्वर, स्तम्भ, निद्रा, तंद्रा, शिरोरुजा, अवसाद, विक्षेप, प्रलेप, अरोचक, भ्रम मूर्च्छा, अग्निनाश, अस्थिभेद, तृष्णा इन्द्रियों में गौरवता 2. आममल का त्याग 3. स्त्रोतों में लेप 4. प्राय: आमाशय में तथा एक देश में व्याप्त 5. पीड़ा अधिक नहीं होती, 6. अति	1. लम्बी, छोटी गोल या मोटी एवं कठोर ग्रंथियों की माला उत्पन्न हो जाती है। 2. ये रक्त वर्ण की होती है। 3. वेदना एवं ज्वरयुक्त 4. श्वास, कास, अतिसार मुखशोष, हिक्का, वमन, भ्रम, मोह

वातपित्तज (अग्नि विसर्प)	पित्तकफज (कर्दम विसर्प)	कफवातज (ग्रंथिक विसर्प)
वर्ण का होकर अग्नि से जलने के समान फफोलों से युक्त हो जाता है। 8. शीघ्र ही मर्मस्थानों को पीड़ित करता है। 9. संज्ञानाश, निद्रानाश, श्वास, हिक्का, उत्पन्न हो जाता है। 10. रोगी अशांत होकर, बेचैनी से भूमी पर बार-बार लेटता या बैठता है, 11. मूच्छित होकर मरण रूपी निद्रा को प्राप्त करता है।	पीत, रक्त या पाण्डु वर्ण की पिड़काओं से व्याप्त 7. स्निग्ध, कृष्ण, अंजनसदृशकाला, मैला, शोथ युक्त एवं गुरु होता है 8. अंतः पाक वाला, उष्ण, क्लेदयुक्त 9. छूते ही फटने वाला 10. मांस झड़ने से कीचड़ के समान 11. स्नायु, सिराएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती है। 12. शव समान दुर्गंध युक्त।	विवर्णता, मूर्च्छा, अंगभंग अग्निनाश ये लक्षण होते हैं।

क्षतज विसर्प

बाह्य क्षत के कारण प्रकुपित वायु रक्त एवं पित्त को प्रकुपित कर कुलथी के समान स्फोटों को उत्पन्न करता है। इसमें शोथ, ज्वर, वेदना, दाह होता है। यह श्याव या रक्तवर्ण का होता है।

इसके उपद्रव–1. ज्वर 2. अतिसार 3. वमन 4. त्वचा एवं मांस का (गलना) फटना 5. क्लम 6. अरोचक 7. अविपाक

साध्यासाध्यता

साध्य–वातज, पित्तज एवं कफज, उपद्रवरहित द्वद्वंज विसर्पभी साध्य।
असाध्य–सन्निपातज एवं क्षतज
जिस पित्तज विसर्प में रोगी का वर्ण अंजनसदृश कृष्ण हो गया हो
मर्मस्थानों में होने वाले विसर्प कृच्छ्र साध्य या असाध्य होते हैं।
उपद्रव युक्त द्वव्द्वंज विसर्प असाध्य
आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसे Erysipelas से Corelate कर सकते हैं।

वातपित्तज (अग्नि विसर्प)	पित्तकफज (कर्दम विसर्प)	कफवातज (ग्रंथिक विसर्प)
वर्ण का होकर अग्नि से जलने के समान फफोलों से युक्त हो जाता है। 8. शीघ्र ही मर्मस्थानों को पीड़ित करता है। 9. संज्ञानाश, निद्रानाश, श्वास, हिक्का, उत्पन्न हो जाता है। 10. रोगी अशांत होकर, बेचैनी से भूमी पर बार-बार लेटता या बैठता है, 11. मूच्छित होकर मरण रूपी निद्रा को प्राप्त करता है।	पीत, रक्त या पाण्डु वर्ण की पिड़काओं से व्याप्त 7. स्निग्ध, कृष्ण, अंजनसदृशकाला, मैला, शोथ युक्त एवं गुरु होता है 8. अंतः पाक वाला, उष्ण, क्लेदयुक्त 9. छूते ही फटने वाला 10. मांस झड़ने से कीचड़ के समान 11. स्नायु, सिराएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाती है। 12. शव समान दुर्गंध युक्त।	विवर्णता, मूर्च्छा, अंगभंग अग्निनाश ये लक्षण होते हैं।

क्षतज विसर्प

बाह्य क्षत के कारण प्रकुपित वायु रक्त एवं पित्त को प्रकुपित कर कुलथी के समान स्फोटों को उत्पन्न करता है। इसमें शोथ, ज्वर, वेदना, दाह होता है। यह श्याव या रक्तवर्ण का होता है।

इसके उपद्रव–1. ज्वर 2. अतिसार 3. वमन 4. त्वचा एवं मांस का (गलना) फटना 5. क्लम 6. अरोचक 7. अविपाक

साध्यासाध्यता

साध्य–वातज, पित्तज एवं कफज, उपद्रवरहित द्वद्वंज विसर्पभी साध्य।

असाध्य–सन्निपातज एवं क्षतज

जिस पित्तज विसर्प में रोगी का वर्ण अंजनसदृश कृष्ण हो गया हो

मर्मस्थानों में होने वाले विसर्प कृच्छ्र साध्य या असाध्य होते हैं।

उपद्रव युक्त द्वव्द्वंज विसर्प असाध्य

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसे Erysipelas से Corelate कर सकते हैं।

IV. मेदोवह स्त्रोतस के रोग

स्थौल्य

कई ग्रंथों में स्थौल्य का वर्णन मेदोरोग के रूप में किया गया है। आचार्य चरक ने अतिस्थूल को अष्टनिन्दनीय के अंतर्गत वर्णित किया है। अतिस्थूल एवं अतिकृश का वर्णन अष्टनिन्दितीय अध्याय में किया है। मेद धातु की अतिवृद्धि से स्थूलता एवं क्षय से कृशता उत्पन्न होती है तथा मेदोदुष्टि से प्रमेह की उत्पत्ति होती है। स्थौल्य के साथ प्रमेह या मधुमेह का संबंध प्रत्यक्ष है।

अतिस्थूल की परिभाषा

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः।
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते॥

(च.सू. 21)

मेद एवं मांस की अतिवृद्धि के कारण जिसके नितंब, उदर एवं स्तन हिलने लगते है (चलते समय), जिसके शरीर का उपचय एवं उत्साह उचित नहीं होता ऐसे व्यक्ति को अतिस्थूल कहा जाता है।

स्थौल्य (मेदोरोग) के निदान

1. व्यायाम न करना
2. दिवास्वप्न
3. कफवर्धक आहार का अतिसेवन
4. मधुर रस का अतिसेवन
5. स्निग्ध पदार्थों का अतिसेवन
6. अचिन्ता से

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

7. मेदस्वी प्राणियों के मांसभक्षण से
8. अतिसंतर्पण से
9. वारुणी के अतिसेवन से

सम्प्राप्ति

उपरोक्त निदानों के सेवन से मेद की अधिक उत्पत्ति होती है तथा मेद द्वारा स्त्रोतोरोध उत्पन्न होकर अन्य धातुओं का पोषण नहीं हो पाता केवल मेदधातु की ही निरंतर पुष्टि होती है जिससे मेदोरोग या स्थौल्य हो जाता है।

लक्षण

1. किसी भी कार्य को करने में असमर्थ
2. क्षुद्रश्वास (थोड़े काम से ही सांस फूल जाना)
3. तृष्णा
4. मोह (अज्ञान)
5. अतिनिद्रा
6. साद (अंगशैथिल्य/ग्लानि)
7. भूख अधिक लगना
8. स्वेद की अधिकता एवं दुर्गंध
9. अल्पप्राण (नाजुक प्रकृति)
10. मैथुन शक्ति अल्प
11. विशेषकर उदर में मेद का अतिसंचय जिससे उदरवृद्धि

आचार्य चरक ने मेदस्वी (स्थूल) व्यक्ति के ये **अष्टदोष** बताए हैं–

अतिस्थूलस्य तावदायुषोः ह्रासः, जवोपरोधः, कृच्छ्र, व्यवायता, दौर्बल्यं, दौर्गन्ध्यं, स्वेदः, क्षुदतिमात्रं पिपासातियोगश्चेति अष्टौ दोषाः।

(च.सू. 21/4)

स्थूल के अष्टदोष

1. आयु का ह्रास
2. श्वास की कृच्छ्रता
3. मैथुन में कठिनाई

4. दौर्बल्य
5. दौर्गन्ध्य
6. अतिस्वेद
7. क्षुधा की अधिकता
8. तृष्णा की अधिकता

अतिस्थूल व्यक्ति में भूख अधिक लगने का कारण

अति वृद्ध मेद मार्गावरोध उत्पन्न करता है जिससे वायु का आवरण होकर वायु अधिक प्रकुपित हो जाता है, यह वायु कोष्ठ में जाकर अग्नि को प्रदीप्त कर देता है जिससे भूख भी अधिक लगती है एवं आहार का शोषण भी शीघ्र ही हो जाता है, ऐसी अवस्था में यदि भोजन न दिया जाए तो अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते है। भोजन न मिलने से ये बढ़े हुए वायु एवं अग्नि व्यक्ति को उसी प्रकार जला देते हैं जैसे–दावाग्नि वन को जला देती है।

कार्श्य

मेदधातु की क्षीणता से कार्श्य उत्पन्न होता है। आचार्य चरक ने अष्टौनिन्दित में अतिकार्श्य का विस्तृत वर्णन किया है।

अतिकृश के लक्षण (परिभाषा)

शुष्कस्फिकगुदरग्रीवो धमनी जालसंततः।
त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वानरोमतः॥

(च.सू. 21/15)

अतिकृश पुरुष के नितम्ब, उदर एवं ग्रीवा शुष्क हो जाते है, शरीर में धमनियों का ज़ाल दिखाई पड़ता है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे शरीर में केवल त्वचा एवं अस्थि ही शेष है तथा संधियाँ (पर्व) स्थूल प्रतीत होती है।

अतिकार्श्य के कारण (निदान)

सेवा रुक्षान्नपानानां लंघनं प्रमिताशनम्।
क्रियातियोगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः॥
रुक्षस्योद्वर्तनं स्नानस्याभ्यासः प्रकृतिर्जरा।
विकारानुशयः क्रोधः कुर्वन्त्यतिकृशं नरम्॥

(च.सू. 21/11-12)

1. रुक्षअन्नपान का सेवन करने से
2. लंघन से
3. अल्पाहार सेवन से
4. क्रियाओं के अतियोग (पंचकर्म अथवा अतिश्रम)
5. शोक के कारण
6. निद्रा आदि वेगों के निग्रह (अवरोध) से
7. रुक्ष उबटन लगाने से
8. अधिक स्नान करने से
9. वातिक प्रकृति के होने से
10. वृद्धावस्था के कारण

11. दीर्घकालीन रोग से
12. क्रोध के कारण कार्श्य होता है

अतिकृश के दोष (लक्षण)

व्यायामतिसौहित्यं क्षुत्पिपासामयौषधम्।
कृशो न सहते तद्वदतिशीतोष्णमैथुनम्।।
प्लीहा कासः क्षयः श्वासोगुल्मोऽर्शांस्युदराणि च।
कृशं प्रायोऽभिधावन्ति रोगाश्चग्रहणीगताः।।

(च.सू. 21/13-14)

अतिकृश व्यक्ति 1. अधिक व्यायाम को
2. अधिक भोजन को
3. अधिक भूख-प्यास को
4. रोग को
5. औषधी को
6. अति शीत-उष्ण को
7. अति मैथुन को सहन नहीं कर सकते

अतिकृश व्यक्ति प्रायः–1. प्लीहारोग 2. कास 3. क्षय 4. श्वास 5. गुल्म 6. अर्श 7. उदररोग 8. ग्रहणी रोग से पीड़ित रहते हैं।

आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि कार्श्य रोगी अधिक भार को सहन नहीं कर सकते, वातव्याधि, अग्निमांद्य एवं रक्तपित्त से ग्रस्त रहते है एवं अल्पप्राण होते है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

प्रमेह

मेद की दुष्टि से प्रमेह की उत्पत्ति बताई गई है, हालांकि प्रमेहों के लक्षणों में मूत्रगत विकृतियाँ विशेषकर होती है। मूत्र द्वारा शरीरगत धातुओं का क्षरण होता है। अष्टौमहागदों के अंतर्गत प्रमेह का वर्णन मिलता है।

प्रमेह की निरुक्ति-परिभाषा

प्रकर्षेण प्रभूतं प्रचुरं वारंवारं वा मेहति मूत्रत्यागं करोति यस्मिन् रोगे स प्रमेहः।

जिस रोग में अत्यधिक मात्रा में बार-बार एवं प्रायः गंदले मूत्र का त्याग होता है उसे प्रमेह कहते हैं।

प्रमेह के निदान

आस्यसुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्॥

(च.चि. 7)

1. आरामदायक आसानों पर बैठे रहने से
2. सुखपूर्वक, अतिनिद्रा से
3. दही का सेवन
4. ग्राम्य, उदक एवं आनूप रसों के (मांसरस) सेवन से
5. दूध के सेवन से
6. नए अन्न एवं पानी के सेवन से
7. गुड एवं गुड से बने पदार्थों के सेवन से
8. अन्य सभी कफवर्धक पदार्थों के सेवन से प्रमेह उत्पन्न होता है।

प्रमेह की सम्प्राप्ति

मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य।
करोति मेहान् समुदीर्णमुष्णैस्ताने व पित्तं परिदूष्य चापि॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून् संदूष्य मेहान् कुरुतेऽनिलश्च।

(मा. नि.)

बस्तिप्रदेश स्थित प्रकुपित कफ शरीरस्थ मेद, मांस एवं क्लेद (जलीय धातु) को दूषित करके कफज प्रमेहों को उत्पन्न करता है।

उष्णादि पदार्थों से प्रकुपित बस्तिगत पित्त शरीरस्थ मेद, मांस एवं जलीयांश को दूषित करके पितज प्रमेहों को उत्पन्न करता है।

कफ एवं पित्त के क्षीण होने पर प्रकुपित वायु धातुओं को कर्षित कर उन्हें दूषित कर बस्ति में लाकर वातिक प्रमेहों को उत्पन्न करता है।

प्रमेह के दोष-दूष्य संग्रह

कफः सपत्तिः पवनश्च दोषा मेदोऽस्त्रशुक्राम्बुवसालसीकाः।
मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः॥

(वा. नि. 10)

अर्थात्–प्रमेह की उत्पत्ति में तीनों दोष–वात, पित्त, कफ एवं दस दूष्य–मेद, रक्त, शुक्र, जल, वसा, लसीका, मज्जा, रस, ओज एवं मांस इन तेरह दोष-दूष्यों के संयोग से बीस प्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं।

प्रमेह के पूर्वरूप

दन्तादीनां मलाढयत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः।
दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते॥

(वा.नि. 10)

1. दन्तादी में मलों की अधिकता (तालु, जिह्वा, गल, दंत आदि)
2. हस्त-पाद में दाह
3. शरीर में स्निग्धता
4. तृष्णा
5. मुखमाधुर्य

इनके अलावा आचार्य सुश्रुत ने अन्य और भी पूर्वरूप बताए है–

6. केशों (बालों) का चिपकना (जटा बन जाना)
7. नखों की वृद्धि
8. श्वास में दुर्गंध
9. मूत्र की मधुरता

प्रमेह का सामान्य लक्षण

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता।
दोषदूष्याविशेषऽपि तत्संयोगविशेषतः॥
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कलप्यते।

(वा.नि. 10)

सभी प्रमेहों का सामान्य लक्षण है–प्रभूत (अधिक) एवं आवलि (गंदला) मूत्र की प्रवृत्ति।

तथा दोष एवं दूष्य के संयोगविशेष के कारण मूत्र के वर्णादि में जो विभिन्नता प्रत्यक्ष होती है उसके आधार पर भेद किए गए हैं।

प्रमेहों के भेद

बीस प्रकार के प्रमेह बताए गए हैं जिनमें से–

कफज प्रमेह–10

पितज प्रमेह–6 एवं

वातज प्रमेह–4 है।

उनकी **साध्यासाध्यता** के विषय में कहा गया है–

साध्याः कफोत्था दश, पित्तजा षड् याप्या, न साध्यः पवनाच्चतुष्कः समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते॥

(च.चि. 6)

अर्थात्–कफज दस प्रमेह साध्य कहे गए है–समक्रिया अर्थात् दोष-दूष्य की समान चिकित्सा होने के कारण।

पित्तज छः प्रमेह याप्य कहे गए हैं–विषमक्रिया अर्थात् दोष-दूष्यों की चिकित्सा में विषमता होने के कारण एवं वातज चार प्रमेह असाध्य कहे गए हैं–महात्यय के कारण अर्थात् शीघ्र ही धातुओं का नाश करने के कारण एवं दोष-दूष्य की एकदम विपरीत चिकित्सा होने से वातिक प्रमेह भयंकर एवं चिकित्सा करने में जटिल होते हैं।

कफज दस प्रमेह

चरक	सुश्रुत	वाग्भट	माधव
1. उदकमेह	1. उदकमेह	1. उदकमेह	1. उदकमेह
2. इक्षुवलिकारसमेह	2. इक्षुवलिकामेह	2. इक्षुमेह	2. इक्षुमेह
3. सान्द्रमेह	3. सान्द्रमेह	3. सान्द्रमेह	3. सान्द्रमेह
4. सान्द्रप्रसादमेह	4. सुरामेह	4. सुरामेह	4. सुरामेह
5. शुक्लमेह	5. पिष्टमेह	5. पिष्टमेह	5. पिष्टमेह
6. शुक्रमेह	6. शुक्रमेह	6. शुक्रमेह	6. शुक्रमेह
7. शीतमेह	7. सिकतामेह	7. शीतमेह	7. शीतमेह
8. सिकतामेह	8. शनैर्मेह	8. सिकतामेह	8. सिकतामेह
9. शनैर्मेह	9. लवणमेह	9. शनैर्मेह	9. शनैर्मेह
10.आलालमेह	10.फेनमेह	10. लालामेह	10. लालामेह

पित्तज छः प्रमेह

चरक	सुश्रुत	वाग्भट	माधव
1. क्षार मेह	1. क्षारमेह	1. क्षारमेह	1. क्षारमेह
2. कालमेह	2. नीलमेह	2. कालमेह	2. कालमेह
3. नीलमेह	3. शोणितमेह	3. नीलमेह	3. नीलमेह
4. लोहितमेह	4. मंजिष्ठामेह	4. रक्तमेह	4. रक्तमेह
5. मञ्जिष्ठामेह	5. हारिद्रमेह	5. मंजिष्ठामेह	5. मंजिष्ठामेह
6. हारिद्रमेह	6. अम्लमेह	6. हारिद्रमेह	6. हारिद्रमेह

वातज चार प्रमेह

चरक	सुश्रुत	वाग्भट	माधव
1. वसामेह	1. वसामेह	1. वसामेह	1. वसामेह
2. मज्जामेह	2. सर्पिमेह	2. मज्जामेह	2. मज्जामेह
3. हस्तिमेह	3. हस्तिमेह	3. हस्तिमेह	3. हस्तिमेह
4. मधुमेह	4. क्षौद्रमेह	4. मधुमेह	4. मधुमेह

प्रमेह के भेदानुसार लक्षण (माधवोक्त, वाग्भटोक्त)

10 कफज प्रमेह

1. **उदकमेह**–मूत्र स्वच्छ, मात्रा में अधिक, श्वेतवर्ण, शीतल, गंध रहित,

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

जल सदृश, किंचित गंदा (आविल) एवं पिच्छिलतायुक्त होता है।

2. **इक्षुमेह**–रोगी गन्ने (ईख) के समान अतिमधुर मूत्र का त्याग करता है।
3. **सान्द्रमेह**–मूत्र को कुछ देर रखने पर तलछट बैठ जाती है।
4. **सुरामेह**–मूत्र उपर से स्वच्छ एवं नीचे घना होता है।
5. **पिष्टमेह**–मूत्र श्वेतवर्ण का, मात्रा में अधिक, पिष्टी सृदश पदार्थ से मिला हुआ प्रतीत होता है तथा मूत्रत्याग के समय शरीर में रोमांच होता है।
6. **शुक्रमेह**–शुक्र के समान या शुक्र मिश्रित मूत्र प्रवृत्ति होती है।
7. **शीतमेह**–मूत्र मधुर एवं स्पर्श में अत्यंत शीतल होता है, तथा बार-बार मूत्रप्रवृत्ति होती है।
8. **सिकतामेह**–मूत्र में सिकता (रेत) के समान छोटे-छोटे कण मिलते हैं।
9. **शनैर्मेह**–रोगी बहुत ही धीरे-धीरे मूत्रत्याग करता है।
10. **लालामेह**–मूत्र पिच्छिल एवं लाला के समान तन्तुयुक्त होता है।

6. पित्तज प्रमेह

11. **क्षारमेह**–मूत्र का वर्ण, गन्ध, एवं रस क्षारमिश्रित जल के समान होता है।
12. **नीलमेह**–मूत्र का वर्ण नीला होता है।
13. **कालमेह**–मूत्र स्याही के समान कृष्ण वर्ण का होता है।
14. **हारिद्रमेह**–मूत्र का वर्ण हरिद्रा के सदृश तथा रस में कटु होता है, मूत्रत्याग के समय दाह होता है।
15. **मंजिष्ठमेह**–मूत्र आम गंधयुक्त, मंजिष्ठा के क्वाथ के वर्ण का होता है।
16. **रक्तमेह**–मूत्र उष्ण, रक्तवर्ण का, लवण रसात्मक एवं दुर्गंधित होता है।

4. वातज प्रमेह

17. **वसामेह**–वसामिश्रित या वर्ण, गंध आदि में वसासदृश मूत्र की बारंबार प्रवृत्ति।
18. **मज्जमेह**–मज्जामिश्रित या वर्ण, गंध आदि में मज्जा के समान मूत्र की बार-बार प्रवृत्ति।
19. **हस्तिमेह**–मदमस्त हाथी के समान, बीना रुकावट के, लसीका मिश्रित एवं विबद्ध मूत्र की प्रवृत्ति।
20. **मधुमेह (क्षौद्रमेह)**–कषाय एवं मधुर रसात्मक मूत्र की बारंबार प्रवृत्ति

सभी प्रकार के प्रमेह समय रहते उचित चिकित्सा न करने पर कालान्तर में मधुमेह में परिवर्तित हो जाते हैं।

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि॥

(सुश्रुत)

मधुमेह

मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा।
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा॥
आवृतो दोष लिङ्गनि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन्।
क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम्॥

(माधव)

मधुमेह में मधु के समान मूत्र की प्रवृत्ति होती है।

यह दो प्रकार का होता है–

1. धातुक्षय के कारण प्रकुपित वायु से
2. कफ या पित्त द्वारा आवृत्त वायु से

आवृत्त वायु से उत्पन्न मधुमेह में आवरक दोष एवं वायु के लक्षण मिलते हैं, ये लक्षण कभी अचानक बढ़ जाते हैं एवं कभी अचानक घट जाते हैं। यह रोग कृच्छ्रसाध्य होता है।

मधुमेह की निरुक्ति

मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः॥

(वा.नि. 10)

जिस प्रमेह में रोगी मधु के समान मूत्र त्याग करता है तथा शरीर में भी मधुरता उत्पन्न हो जाती है उसे मधुमेह कहते हैं।

यह मधुमेह 2 प्रकार का होता है–

1. स्वतंत्र एवं 2. परतंत्र

1. सहज 2. अपथ्यज

1. धातुक्षयजन्य 2. आवरणजन्य

जो मधुमेह अन्य प्रमेहों के उपरांत उत्पन्न होता है वह परतंत्र कहलाता है जो मधुमेह स्वतंत्र कारणों से, वात के प्रकोप से उत्पन्न हो एवं जिसमें ओज मूत्रमार्ग से निकले वह स्वतंत्र कहलाता है।

मातापिता के बीजदोष से संतान में होने वाला मधुमेह सहज कहलाता है। जन्मोत्तर काल में दोषप्रकोपक मिथ्या आहार-विहार से उत्पन्न होने वाला प्रमेह अपथ्यज कहलाता है।

प्रमेहपिड़का

प्रमेह की उपेक्षा करने पर समय रहते उचित चिकित्सा न करने पर प्रमेहपिडकाओं की उत्पत्ति हो जाती है।

इन प्रमेहपिडकाओं की संख्या चरक ने सात एवं वाग्भट ने दस बताई है।

यह प्रमेहपिडकाएँ भी स्वतंत्र एवं परतंत्र दो प्रकार की होती है। जो प्रमेहपिडकाएँ प्रमेह के उपरांत उपद्रव स्वरूप उत्पन्न होती है वे परतंत्र एवं जो पिडकाएँ बिना प्रमेह के भी मेद की दुष्टि से उत्पन्न होती है वे स्वतंत्र कहलाती हैं।

बिना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः।

(च.सू. 17)

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी।
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका।।
विद्रधिश्चेति पिडकाः प्रमेहोपेक्षया दश।
सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु।।

(वा.नि. 10)

चरक	वाग्भट एवं सुश्रुत
1. शराविका	1. शराविका
2. कच्छपिका	2. कच्छपिका
3. जालिनी	3. जालिनी
4. सर्षपी	4. सर्षपी
5. अलजी	5. अलजी
6. विनता	6. विनता
7. विद्रधि	7. विद्रधिका
	8. मसूरिका
	9. पुत्रिणी
	10. विदारिका

आचार्य चरक ने पुत्रिणी, विदारिका एवं मसूरिका का वर्णन नहीं किया।

पिडकाओं के लक्षण

1. **शराविका**–किनारों से उठी हुई एवं बीच में दबी हुई (शराव की तरह)।
2. **कच्छपिका**–कछुए के पृष्ठ के समान उभरीं हुई, कठोर, स्निग्ध एवं दाहयुक्त पिड़का।
3. **जालिनी**–मांसजालसदृश एवं तीव्र दाह युक्त पिड़िका।
4. **सर्षपी**–श्वेत सरसों के समान आकार एवं प्रमाण वाली पिड़का।
5. **अलजी**–रक्त एवं श्वेत वर्ण के स्फोटों से युक्त दारुण पिड़का।
6. **विनता**–पृष्ठ या उदर पर होने वाली अत्यंत वेदना एवं क्लेदयुक्त बड़ी एवं नीलवर्ण की पिड़का।
7. **विद्रधि (विद्रधिका)**–विद्रधि के लक्षणों से युक्त पिड़का।
8. **मसूरिका**–मसूर के आकार की पिड़का।
9. **पुत्रिणी**–बड़ी एवं पास में छोटी-छोटी अनेक पिड़काओं से युक्त
10. **विदारिका**–विदारीकन्द के समान गोल एवं कठिन पिड़का।

पिडकाओं के उपद्रव–तृष्णा, कास, मांसक्षय, मोह, हिक्का, ज्वर, विसर्प, मर्मावरोध।

प्रमेहपिडकाओं की साध्यासाध्यता

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः।
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिड़काः परिवर्जयेत्॥

(सु. नि. 6)

गुद प्रदेश, हृदय, शिर, पृष्ठ एवं मर्मस्थानों में होनेवाली उपद्रवयुक्त एवं मंदाग्नि व्यक्ति को होने वाली प्रमेह पिड़काएँ असाध्य होती है।

प्रमेह के उपद्रव

वातिक प्रमेह के उपद्रव	पित्तज प्रमेह के उपद्रव	कफज प्रमेह के उपद्रव
उदावर्त, कम्पन, हृदग्रह, सभी रसों के सेवन की इच्छा, शूल, निद्रानाश, शोष, कास एवं श्वास	बस्ति एवं शिश्न में तोद अण्डकोष में फूटने के समान पीड़ा, ज्वर, दाह, तृष्णा, खट्टी डकारे आना, मूर्च्छा, अतिसार	भोजन का अपाक, अरुचि, वमन, अतिनिद्रा, कास, एवं प्रतिश्याय

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

प्रमेहों की असाध्यता

उपर्युक्त उपद्रवों से युक्त, धातु एवं मूत्र के अत्यधिक स्त्राव से ग्रस्त, प्रमेहपिडकाओं से आक्रांत एवं दीर्घकालीन प्रमेह असाध्य होता है।

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्य उक्तः स हि बीजदोषात्।
ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांस्तान्प्रवदन्त्यसाध्यान्॥

(च.चि. 6)

जात (सहज) प्रमेही या मधुमेहि बीजदोष के कारण असाध्य होते हैं, अन्य कुलज विकार भी असाध्य होते हैं।

प्रमेहमुक्त के लक्षण

जिस प्रमेह रोगी का मूत्र स्वच्छ, विशद, पिच्छिलतारहित हो जाए एवं रस तिक्त एवं कटू हो जाए उसे प्रमेह से मुक्त समझना चाहिए।

V. अस्थिमज्जावह स्त्रोतस के रोग

वातव्याधियाँ

आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट ने वातव्याधियों का वर्णन निदान स्थान प्रथम अध्याय में किया गया है जबकि चरक ने चिकित्सास्थान के 28वें अध्याय में वातव्याधियों का विस्तृत वर्णन किया है। शरीर में अधिकांश व्याधियाँ वातकी विकृति से ही होती है। आयुर्वेद चिकित्सा या रोग निदान में वातव्याधियों का अत्यंत महत्त्व है। आयुर्वेद चिकित्सा प्राप्त करने वाले रोगियों में वातव्याधि से ग्रस्त रोगियों की संख्या अधिक होती है, अतः वातव्याधियों का सटीक निदान अपेक्षित है।

परिभाषा

विकृतवातजनितोऽसाधारणो व्याधिर्वातव्याधिः।

विकृत वायु से उत्पन्न असाधारण व्याधि वातव्याधि कहलाती है।

संख्या–वायु से होने वाले रोगों की गणना करना असंभव है क्योंकि शारीर दोषों में वातदोष ही प्रधान है, बिना वात के कोई भी कार्य संभव नहीं, किसी भी रोग की उत्पत्ति में वात का अनुबंध होना सामान्य सी बात है। अतः अधिकांश सामान्यज व्याधियों में वात की उपस्थिति पाई जाती है। नानात्मज व्याधियों में भी आचार्य चरक ने वातनानात्मज रोगों की संख्या ही सर्वाधिक-80 बताई है। सामान्यज रोगों की संख्या तो असंख्य है। प्रकुपित वायु जिस स्थान पर जाकर स्थानसंश्रय कर लेता है वही रोग उत्पन्न कर देता है।

वातप्रकोप के मुख्यतः दो कारण है–

"वायोर्धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेन च।"

1. धातुक्षय से
2. मार्गावरण से वात का प्रकोप होता है।

इसके अलावा अन्य वातप्रकोपक मिथ्या आहार विहार का सेवन तो है हि वातप्रकोपक सामान्य कारण।

वातप्रकोपक सामान्य कारण

1. रुक्ष, शीत पदार्थों का सेवन
2. अल्प मात्रा में या लघु अन्न का सेवन, अनशन
3. विरुद्धाहार का सेवन
4. आमदोष
5. अतिमैथुन
6. अतिरात्रि जागरण
7. अधिक मार्गगमन, अतिव्यायाम कूदना, तैरना आदि
8. विषमोपचार (पंचकर्मों का अनुचित प्रयोग)
9. शारीरिक चेष्टाओं का अनुचित रूप में प्रयोग करना
10. धातुक्षय
11. दिवास्वप्न
12. मलमूत्रादि वेगों को रोकना
13. आघात
14. हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि शीघ्र चलने वाली सवारी से गिरना
15. चिन्ता, शोक आदि से पीड़ित
16. क्रोध, भय आदि मानसिक कारणों से
17. आमरस या अन्य दोष-धातु आदि द्वारा स्त्रोत्सों में अवरोध से वात की वृद्धि होती है।

सम्प्राप्ति

देहे स्त्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली।
करोति विविधान् व्याधिन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रितान्॥

(च.चि. 28)

अपने कारणों से प्रकुपित वायु शरीर के रिक्त स्त्रोतों को परिपूर्ण करके विविध प्रकार के एकांगिक या सर्वांगिक रोगों को उत्पन्न करता है।

पूर्वरूप

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम्।

अव्यक्त लक्षण (ईषत् व्यक्त) ही वातव्याधियों के पूर्वरूप है।

रूप

आत्मरूपं तु तद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः।

उन्हीं पूर्वरूप में अव्यक्त लक्षणों का व्यक्त हो जाना आत्मरूप या लक्षण कहलाता है। तथा वातव्याधि के लक्षणों में लघुता हो जाना उसके अपाय (नाश) का लक्षण है। अर्थात् रोगशमन का ज्ञापक होता है।

विकृत वात के सामान्य लक्षण

1. अंग-प्रत्यंगों में संकोच होना
2. पर्वों में जकड़ाहट होना
3. अस्थि एवं पर्वों में भेदनवत पीड़ा
4. रोमांच, प्रलाप, निद्रानाश
5. पृष्ठ, पाद एवं शिर में जकड़ाहट
6. खंजता, पंगुता, कुब्जता, शुष्कता
7. गर्भस्त्राव, गर्भपात
8. शुक्र या आर्तव का नष्ट हो जाना
9. शरीर में कंपन या शून्यता
10. शिर, नासा, नेत्र, जत्रु, ग्रीवा आदि में वक्रता
11. शरीर में भेदनवत् या तोदवत् पीड़ा
12. अंगों में आक्षेप, मोह, आयास आदि

वातरोग–कारणों एवं स्थानों की विशेषता से प्रकुपित वायु विभिन्न रोगों को उत्पन्न करता है।

कोष्ठाश्रित वायु–मल-मूत्र का अवरोध हो जाता है, ब्रघ्नरोग (वंक्षणशोथ) हृदरोग, गुल्म, अर्श एवं पार्श्वशूल होता है।

सर्वांग वात–सर्वांग में स्फुरण (फड़कन), भंजनवत पीड़ा एवं संधियाँ फूटती हुई सी वेदनायुक्त होती है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

गुदगतवात–मल-मूत्र एवं अपानवायु का निग्रह (रुकावट), उदरशूल, आध्मान, अश्मरी, शर्करा, जंघा-उरु-त्रिक-पाद-पृष्ठ में वेदना एवं शोष।

आमाशयगत वात–पार्श्व, उदर, हृदय, नाभि में वेदना, तृष्णा, उद्गार, विसूचिका, कास, कण्ठ एवं मुख शोष एवं श्वास रोग।

पक्वाशयगत वात–आंत्रकूजन, शूल, आटोप, मल-मूत्र की कष्टपूर्वक प्रवृत्ति, आनाह, त्रिकप्रदेश में शूल।

इन्द्रियगत वात–कर्ण, नासा, जिह्वा, नेत्र इन इंद्रियों में स्थित प्रकुपित वायु इंद्रियों के प्राकृत कार्यों का नाश कर देती है, इंद्रियाँ या तो कार्य पूर्णरूप से नहीं कर पाती है या विकृतरूप से करती है।

त्वक्गतवात–त्वचा रुक्ष, फटि हुई, सुप्त (शून्य), कृश, कृष्ण, तोदयुक्त, तनावयुक्त, लालवर्ण की तथा पर्वों में वेदना होती है।

रक्तगतवात–शरीर में तीव्र पीड़ा, संताप, विवर्णता, कृशता, अरुचि शरीर में फुंसियाँ निकलना, खाए हुए अन्न का स्तम्भ होना।

मांस एवं मेदोगत वायु–शरीर में भारीपन, अत्यधिक तोद, दण्ड या मुक्के से मारने के समान पीड़ा, शरीर पीड़ायुक्त एवं थका हुआ सा।

मज्जा एवं अस्थिगत वायु–अस्थि एवं पर्वों में भेदनवत् पीड़ा, संधिशूल, मांस एवं बल का क्षय, निद्रानाश लगातार वेदना।

शुक्रगत वायु–शुक्र की शीघ्र प्रवृत्ति या अप्रवृत्ति, गर्भ का शीघ्रपात या देर से प्रसव तथा शुक्र एवं गर्भ की विकृति

सिरागतवायु–शूल, सिराओं में आकुंचन या सिराओं की पूर्णता

स्नायुगत वायु–बाह्यायाम, अन्तरायाम, खल्ली, कुब्जता तथा अन्य सर्वांग या एकांग में वातरोगों की उत्पत्ति

आक्षेपक–संपूर्ण शरीर में बार-बार आक्षेप आने के कारण इसे आक्षेपक कहते हैं। यह सर्वशरीरगत होता है तथा इसमें मुख्यतः व्यानवायु की विकृति होती है।

सम्प्राप्ति–यदा तु धमनीः सर्वाः कुपि ्येति मारुतः।
तदाऽऽक्षिपत्याशु मुहुर्मुहु ं मुहुश्चरः।
मुहुर्मुहुश्चाक्षेपणादाक्षेपक इति स्मृतः।।

(सु.नि. 1)

अर्थात् जब शरीर की सभी धमनियाँ प्रकुपित वायु कारण आक्रांत होती है तब सारे शरीर में बार-बार आक्षेप (झटके) आते हैं, बारंबार आक्षेप आने के कारण इस रोग को आक्षेपक कहते हैं।

Convulsions के साथ हम इसे correlate कर सकते हैं। यह अवस्था कई विकारों में मिल सकती है।

आक्षेपक की अवस्था विशेष–अपतंत्रक एवं अपतानक

आचार्य ने अपतंत्रक के विषय में कहा है कि जब अपने कारणों से प्रकुपित वायु अपने स्थान (पक्वाशय) से उपर उठकर सिर की ओर जाता है तब हृदय, सिर एवं शंख प्रदेश को पीड़ित करता है तथा शरीर को धनुष की तरह झुका देता है, शरीर में आक्षेप एवं मूर्च्छा को उत्पन्न करता है। इस समय श्वासप्रश्वास में कष्ट होता है, नेत्र खुले या अधखुले रह जाते हैं, रोगी बेहोशी की अवस्था में कबूतर की तरह घुरघुर शब्द करता है, इस अवस्था को अपतंत्रक कहा गया है। तथा अपतानक के विषय में आचार्य चरक ने कहा है कि जब दृष्टि पूरी तरह से पथरा सी जाती है (आच्छादित हो जाती है) संज्ञानाश भी पूरी तरह हो जाता है तथा कण्ठकूजन होने लगता है दौरे से मुक्त हो जाने पर स्वस्थता का अनुभव तथा दौरा पड़ने पर मूर्च्छा आ जाती है तब इस दारुण रोग को अपतानक कहते हैं।

आचार्य सुश्रुत ने भी कहा है कि जो आक्षेपक बीच-बीच में रोगी को मोहित या मूर्च्छित कर दे उसे अपतानक कहते हैं।

अपतानक चार प्रकार का बताया गया है–

1. दण्डापतानक
2. धनुस्तम्भसंज्ञक अन्तरायाम
3. धनुस्तम्भसंज्ञक बहिरायाम
4. पार्श्वायाम

धनुः स्तम्भ

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुःस्तम्भसंज्ञकः।

प्रकुपित वायु जब शरीर को धनुष्य के समान झुका देती है तब इसे धनुःस्तम्भ कहते हैं।

यह शरीर का झुकाव जब आगे की ओर होता है तब अन्तरायाम, बाहर की तरफ होता है तब बाह्यायाम एवं पार्श्व की तरफ होता है तब पार्श्वायाम होता है। जब शरीर किसी भी ओर न झुके तथा एकदम सीधा कड़ा हो जाए तो वह दंडापतानक कहलाता है।

धनुःस्तम्भ को धनुर्वात भी कहते हैं, इसे Tetanus से correlate कर सकते हैं।

दण्डापतानक

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति।

(वा.नि. 15)

दण्डवत्स्तम्भयेद्देहं स तु दण्डापतानकः।

(सु.नि. 1)

जब प्रकुपित वायु कफ के साथ मिलकर शरीर की संपूर्ण धमनियों में व्याप्त होकर शरीर को दंड की भाँति सीधा और कड़ा बना या जड़ बना देता है तब उसे दण्डपतानक कहते हैं चरक ने इस अवस्था या रोग को "दण्डक" कहा है। तथा इसे केवल वातजन्य एवं असाध्य कहा है। इसे Orthotonos कहते हैं।

अभ्यन्तरायाम (धनुःस्तम्भ)

प्रकुपित वायु जब अंगुली, गुल्फ, जठर, उदर, हृदय, वक्ष एवं गले का आश्रय कर स्नायुप्रतानों में आक्षेप उत्पन्न करता है, तब रोगी की आँखे (निश्चल) पथरा सी जाती है,हनु में जकड़ाहट, पार्श्व में टूटने के समान पीड़ा कफ का वमन करता है। तथा शरीर अंदर की ओर (उदर) धनुष के समान झुक जाता है, तब इसे धनुस्तम्भसंज्ञक अभ्यन्तररायाम कहते हैं।

Tetanus में Emphiosthtonos की अवस्था से इसे correlate कर सकते हैं।

बाह्यायाम (धनुः स्तम्भ)

प्रकुपित वायु जब पादमूल, पिंडिका, कटि, पृष्ठ, ग्रीवा के पश्चिम भाग के स्नायु जालों का आश्रय कर शरीर को बाहर (पृष्ठ) की तरफ झुका देता है तब उसे धनुःस्तम्भ संज्ञक बाह्यायाम कहते हैं। इसमें वक्षक (Sternum) एवं उरु (Ribs) clavicle आदि के भग्न होने की संभावना रहती है। अतः इसे असाध्य कहा गया है। इसे Opisthotonos की Condition कह सकते हैं।

पार्श्वायाम

जब रोगी केवल एक पार्श्व की ओर झुकता है तब इसे पार्श्वायाम कहते है यह बाह्यायाम का ही भेद है। इसे Pleurosthotonas कहते हैं।

आक्षेपक के भेद

यह चार प्रकार का होता है–

1. कफानुबंधी
2. पित्तानुबंधी
3. केवल वातज
4. अभिघातज

अपतानक (आक्षेपक) की असाध्यता

गर्भपात के कारण, अत्यधिक रक्तस्त्राव के कारण तथा अभिधात के कारण होंने वाला आक्षेपक (आपतानक) असाध्य होता है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

अर्दित

अर्दयति पीडयति इति अर्दितः।

जिस रोग से मुखार्ध में पीड़ा हो वह अर्दित कहलाता है। इस रोग में मुखगत विकृति विशेषरूप से होती है, मुखवक्रता यह प्रमुख लक्षण होता है।

अर्धे तस्मिन्मुखार्धे वा केवले स्यात्तदर्दितम्॥ (च.)

आचार्य सुश्रुत केवल मुखगत विकृति को अर्दित मानते हैं, किन्तु दृढ़बल मुख के साथ-साथ संपूर्ण अर्धांग की भी इसमें विकृति मानते हैं। आचार्य चक्रपाणि के अनुसार अर्दित के दौरे पड़ते हैं। आचार्य चरक एवं वाग्भट शरीर के आधे भाग या केवल मुख के आधे भाग में होनेवाली वातजन्य विकृति को अर्दित मानते हैं।

अर्दित की निदान-सम्प्राप्ति-स्वरूप

निदान

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि वा।
हसतो जृम्भतो वाऽपि भाराद्विषमशायिनः॥

(मा. नि.)

1. उच्च स्वर में बोलने
2. कठिन पदार्थों के भक्षण करने
3. अधिक जोर-जोर से हँसने
4. जोर से जम्हाई लेने
5. अधिक भार उठाने
6. विषमासन पर सोने से (ऊँची नीची जगह)

सम्प्राप्ति

शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः।
अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः॥

उपरोक्त निदानों के सेवन से प्रकुपित हुआ वायु सिर, नासा, ओष्ठ, चिबुक, ललाट, अक्षि की संधियों में व्याप्त होकर उन्हें आक्रान्त कर मुख को पीड़ित करते हुए टेढ़ा (वक्र) करते हुए अर्दित रोग को उत्पन्न करता है।

लक्षण

वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते।
शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम्।
ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना।

(मा. नि.)

1. मुख का आधाभाग टेढ़ा (वक्र) हो जाता है।
2. ग्रीवा भी टेढ़ी (वक्र) हो जाती है।
3. सिर में कंपन होने लगता है।
4. बोल पाने में असमर्थ हो जाता है (वाक्संग)
5. नेत्रआदि (मुखगत अवयवों) में विकृति आ जाती है।

पूर्वरूप

1. रोमहर्ष
2. वेपथु (कंपन)
3. नेत्रों में मलिनता
4. वायु की उपर की ओर गति
5. त्वचा में सुन्नता (मुखगत)
6. तोद
7. मन्या एवं हनु में जकड़ाहट

अर्दित की असाध्यता

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः।
न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च॥

(सु.नि. 1)

1. अत्यंत क्षीण रोगी

2. जो आँखों की पलकें न झपक सके
3. बिलकुल न बोल सके या अस्पष्ट बोले
4. जिसका अर्दित तीन वर्ष पुराना हो
5. जिसके नेत्र, नासा, मुख आदि से निरंतर स्त्राव निकल रहा हो
6. जो कंपवात से पीड़ित हो।

ऐसा रोगी असाध्य होता है।

पक्षाघात

पर्याय–पक्षवध, पक्षाघात, अर्धांगघात, अर्धांगवात, लकवा, फालिज़ पक्षाघात या पक्षवध शरीर के आधे पार्श्व का घात होता है। यह अंगघात का ही एक भेद है। विभिन्न प्रकार के अंगघात–

एकांगघात–केवल एक अंग (हाथ या पैर) का घात (Monoplegia)
पक्षाघात–शरीर के पक्ष (अर्धांग) का घात (Hemiplegia)
अधरांगघात–शरीर के अधोभाग (दोनों पैरों) का घात (Paraplegia)
सर्वांगघात–संपूर्ण शरीर का घात (Diplegia)

सम्प्राप्ति (माधवोक्त)

गृहीत्वाऽर्धं तनोर्वायुः सिराः स्नायूर्विशोष्य च।
पक्षमन्यतरं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन्।
(सु.नि. 1)

कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः।
एकांगरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः।
सर्वाङ्गरोगस्तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले।।
(वा.नि. 15)

अपने कारणों से प्रकुपित वायु शरीर के आधे भाग में आश्रित होकर सिरा एवं स्नायुओं को सुखाकर संधिबंधनों को शिथिल करके मनुष्य के आधे शरीर की क्रिया एवं चेतना का नाश कर देता है, तब कुछ लोग उसे एकांग रोग एवं कुछ उसे पक्षवध कहते हैं। और जब प्रकुपित वायु सर्व शरीरगत होकर संपूर्ण शरीर की क्रिया का नाश कर देता है तब उसे सर्वांगरोग कहते हैं।

सुश्रुतानुसार

यदा प्रकुपितोऽत्यर्थं मातरिश्वा प्रपद्यते।
तदान्यतरपक्षस्य सन्धिबन्धान् विमोक्षयन्।
हन्ति पक्षं तमाहुर्हि पक्षाघातं भिषग्वराः।।

अपने कारणों से अत्यंत प्रकुपित वायु सर्वांग में व्याप्त होकर अन्य (एक)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

पक्ष के संधिबंधनों को शिथिल कर उस पार्श्व का नाश (क्रियाहानि) करके पक्षाघात को उत्पन्न करता है।

पक्षाघात में कफ एवं पित्त का अनुबंध

पक्षाघात में वात के साथ-साथ पित्त एवं कफ दोष का भी अनुबंध हो सकता है, तदनुसार लक्षण मिलते हैं।

दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते।
शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते॥

पक्षाघात में पित्त का अनुबंध होने पर–दाह, सन्ताप एवं मूर्च्छा तथा
कफ का अनुबंध होने पर–शीतता, शोथ एवं गुरुता ये लक्षण मिलते हैं।

साध्यासाध्यता

शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः।
साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम्॥

(सु.नि. 1)

पित्तानुबंधी–साध्य
कफानुबंधी–साध्य
शुद्ध वातज–कृच्छ्रसाध्य
धातुक्षयजन्य–असाध्य

असाध्य लक्षण

गर्भवती, सद्यःप्रसूता, बालक, वृद्ध या क्षीण व्यक्तियों में तथा अतिरक्तस्त्राव होने पर होने वाला पक्षाघात तथा जिसमें सभी वेदनाएँ (संज्ञाएँ) नष्ट हो गई हो वह असाध्य होता है।

गृध्रसी

गृध्रसी नाड़ी में शोथ होने से यह रोग होता है। इसमें कटि प्रदेश से लेकर पादतल तक वेदना का संचार होता है। यह प्रायः एक पैर में होता है कभी-कभी दोनों पैरों में हो सकता है।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात्।
गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृहणाति स्पन्दते मुहुः॥
वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता।

(च चि. 28)

स्फिक् प्रदेश से एक विशेष प्रकार की वेदना शुरू होकर कटि के पृष्ठभाग, ऊरु, जानु, जंघा एवं पैर तक जाती है, उसे गृध्रसी कहते हैं। इसमें जकड़ाहट, पीड़ा, तोद, स्पन्दन (फड़कन) ये लक्षण भी मिलते हैं। वात के साथ कफ का अनुबंध होने पर उपरोक्त लक्षणों के अलावा तंद्रा, गुरुता एवं अरोचक ये लक्षण भी मिलते है।

लक्षण

वातजायां भवेत्तोदो देहस्यापि प्रवक्रता।
जानुकटयूरुसंधीनां स्फुरणं स्तब्धता भृशम्॥
वात श्लेष्मोद्भवायां तु निमित्तं वह्निमार्दवम्।
तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च॥ (माधव)

वातिक गृध्रसी–तोद, शरीर की वक्रता, जानु, कटि, उरु की संधियों में स्फुरण एवं जकड़ाहट

वातकफज गृध्रसी–अग्निमांद्य, तंद्रा, मुखप्रसेक, भक्तद्वेष ये लक्षण मिलते हैं।

आचार्य सुश्रुत ने पार्ष्णि (एडी) के समीप की कण्डरा में वातप्रकोप को गृध्रसी माना है।

पार्ष्णिः प्रत्यङ्गुलीनान्तु कण्डरा याऽनिलार्दिता।
सक्थ्नः क्षेपं निगृहणीयाद् गृध्रसीति हि सा स्मृता॥

(सु.नि. 1)

अर्थात् गुल्फ के अधोभाग एड़ी एवं अंगुलियों से संबंधित कंडरा प्रकुपित वायु से आक्रांत होकर पैर की गति को प्रभावित करती है उसे ग्रध्रसी कहते हैं।

Sciatica Nerve के क्षेत्र में यह वेदना होती है अतः Sciatica व्याधि से इसे correlate करते हैं।

विश्वाची

बाहु या हस्त प्रदेश की गृध्रसी को 'विश्वाची' कहते हैं। जिस तरह गृध्रसी में कटि प्रदेश से शुरू होकर पाद के पृष्ठ भाग से होते हुए पादतल तक वेदना का संचार होता है, ऐसे ही विश्वाची में 'बाहु' के पृष्ठ भाग से वेदना प्रारंभ होकर हस्त एवं अंगुलियों के पृष्ठ तक जाती है।

गृध्रसी व्याधि में चलने में कष्ट होता है जबकि विश्वाची में बाहु को उठाने एवं आक्रांत हस्त से कार्य करने में कष्ट होता है।

तलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कंडरा बाहुपृष्ठतः।
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेति सोच्यते॥

(सु.नि. 1)

बाहु के पृष्ठ भाग से प्रारंभ होकर अंगुलियों के पृष्ठ भाग तक तथा प्रकोष्ठ एवं हस्त के आगे वाली कंडरा को दूषित करके बाहु के कार्य का नाश करने वाले रोग को विश्वाची कहते हैं।

Ulnar या Radial nerves की विकृति (शोथ) के कारण हाथ की flexor या extensor muscles की क्रिया हानि हो जाती है, जिससे विश्वाची के समान लक्षण उत्पन्न होते हैं। Ulnar or radial neuritis की condition.

यह भी ग्रधृसी की तरह प्रायः एक बाहु को आक्रांत करती है परंतु कभी-कभी दोनों बाहु आक्रांत हो सकती है।

अवबाहुक

प्रकुपित वायु असंप्रदेश में स्थित होकर असंप्रदेश स्थित सिराओं में संकोच या विकार उत्पन्न कर अवबाहुक रोग को उत्पन्न करता है।

सिराश्चाकुञ्च्य तत्रस्थो जनयेदवबाहुकम्।

(सु.नि. 1)

यह वातकफजन्य होता है। अंससंधि विश्लेष (dislocation) या अक्षकास्थि भग्न के कारण Brachial plexus के Paralysis से यह अवस्था उत्पन्न हो सकती है।

अंसशोष

अंसदेशस्थितो वायुः शोषयेदंसबन्धनम्।

(सु.नि. 1)

अंसप्रदेश स्थित प्रकुपित वायु अंस स्थित श्लेष्मा को सुखाकर अंसशोष को उत्पन्न करता है। इसमें Synovial fluid के कम हो जाने से Frozen shoulder की स्थिति उत्पन्न होती है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

मन्यास्तम्भ

मन्या (ग्रीवा) की जकड़ाहट को मन्यास्तम्भ कहते हैं।

दिवास्वप्नासमस्थानविवृतोर्ध्वनिरीक्षणैः।
मन्यास्तम्भ प्रकुरुते स एव श्लेष्माणाऽवृतः॥

(सु.नि. 1)

दिवास्वप्न करने से, विषमस्थान में सोने से, उपर की ओर अधिक समय तक देखने से, कफ से आवृत्त वायु मन्यास्तम्भ रोग को उत्पन्न कर देता है।

इसे Torticollis या Wry neck कह सकते हैं।

आचार्य चरक ने मन्यास्तम्भ एवं अन्तरायाम को एक ही माना है।

मन्यसंश्रित्य वातोऽन्तर्यदा नाडीः प्रपद्यते।
मन्यास्तम्भं तदा कुर्यादन्तरायामसंज्ञितम्॥
दन्तानां दंशनं लाला पृष्ठायामः शिरोग्रहः।

प्रकुपित वायु मन्या नामक दोनों नाड़ियों का आश्रय कर नाड़ी के अंदर प्रविष्ट हो जाती है तब अंतरायाम नामक मन्यास्तम्भ की उत्पत्ति होती है। इसमें गर्दन अंदर की ओर खिंच जाती है, रोगी दोतों को काटता है, मुख से लालास्त्राव होता है, पीठ पीछे की ओर खिंच जाती है, सिर में जकड़ाहट, जृम्भा, मुख की जकड़ाहट ये लक्षण मिलते हैं।

आधुनिक मतानुसार ग्रीवा स्थित मांसपेशियों में जकड़ाहट के कारण मन्यास्तम्भ हो सकता है। इसका कारण शीत वायु का स्पर्श, अभिघात, विषम स्थान में सिर (गर्दन) रखकर सोने आदि है।

यह विकृति प्रायः एक ओर कभी-कभी दोनों ओर हो सकती है। एक ओर विकृति होने पर ग्रीवा या सिर विपरित दिशा की ओर घूम जाता है। मुख ऊपर की ओर एवं कंधे उठ जाते हैं। दोनों तरफ की विकृति होने पर सिर पीछे की ओर खिंच जाता है, ग्रीवा की गति पूर्णतया अवरुद्ध हो जाती है।

कटिग्रह

कटिग्रह का संहिताओं में कहीं वर्णन प्राप्त नहीं होता। किंतु कटिग्रह से पीड़ित रोगियों की संख्या आतुरालयों में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है।

प्रकुपित वायु जब कटिप्रदेश में आश्रित होकर जकड़ाहट उत्पन्न कर देती है तो इसे कटिग्रह कहते हैं। Lumbago या Lumbar spondylosis से इसे correlate कर सकते हैं। शीत वायु के स्पर्श, आघात, भारी सामान को उठाना, कमर में अचानक झटका लगना आदि कई कारण हो सकते है कटिग्रह के।

पंगुता

शास्त्रों में खंजता एवं पंगुता का एकसाथ वर्णन किया गया है। प्रकुपित वायु जब कटिप्रदेश में आश्रित होकर जब एक पैर की कंडरा में आक्षेप उत्पन्न कर एक पैर से चलने में असमर्थता उत्पन्न करें (लगड़ापन) तो खंजता कहते हैं।

खंजता Limping है जो कि Monoplegia का एक प्रकार है। जबकि पंगुता Paraplegia है जिसमें दोनों पैर क्रियारहित हो जाते हैं।

कलायखंज

कलाय काली दाल या खिसारी खाने से जो खंजता उत्पन्न होती है उसे कलायखंज कहते हैं। यह अत्यंत वातप्रकोपक होती है।

प्रक्रामन् वेपते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति।
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम्।

(सु.नि. 1)

चलते हुए जिसके पैरों में कंपन होता है तथा जो लंगड़ाते हुए चलता है तथा जिसके संधिबंधन शिथिल हो गए हैं वह कलायखंज से पीड़ित समझना चाहिए।

Lathyrism से इसे correlate कर सकते हैं। Lathyrus group की दाल के सेवन से Spastic spinal Paralysis होकर ये अवस्था उत्पन्न होती है।

सन्धिगतवात

इसे संधिवात भी कहते हैं। आमतौर पर वातव्याधि से पीड़ित रोगियों में संधि वात के रोगियों की संख्या सबसे अधिक मिलती है। इसे Osteoarthritis से correlate करते हैं।

आचार्य चरक ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है–

वातपूर्णदृतिस्पर्शः शोथः सन्धिगतेऽनिले।
प्रसारणाकुञ्चनयोः प्रवृत्तिश्च सवेदना।।

प्रकुपित वायु जब संधि में आश्रित होकर उसे आक्रांत करता है। तो वायु से भरी हुई मशक के समान उसका स्पर्श प्रतीत होता है तथा उसमें शोथ हो जाता है एवं प्रसारण एवं आकुंचन में वेदना एवं असमर्थता उत्पन्न होती है।

माधव के अनुसार

हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ् शूलटोपौ करोति च।।

संधिस्थित प्रकुपित वायु संधि को नष्ट कर (क्रियाहानि) उसमें शूल एवं आटोप को उत्पन्न कर देता है।

अस्थिमज्जागत वात

मेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः।

(च.चि. 18)

अस्वप्नः संतता रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले।।

(माधव)

मज्जा एवं अस्थि में जब प्रकुपित वायु का आश्रय होता है तब अस्थि एवं पर्वों में भेदनवत पीड़ा, संधिशूल, मांस एवं बल का क्षय, निद्रानाश एवं निरंतर पीड़ा ये लक्षण उत्पन्न होते हैं।

इसे General Arthritis की Condition कह सकते हैं। जिसमें Joint और bony pain होता है।

कुछ अन्य वातविकार

वातकण्टक–आम भाषा में इसे "मोच आना" (Sprain) कह सकते हैं।

रुक् पादे विषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा।
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम्।।

(वा.नि.)

विषमस्थान (ऊँची-नीची जगह) पर अचानक पैर पड़ने से या अत्यधिक परिश्रम के कारण वायु प्रकुपित होकर गुल्फ संधि में (Ankle) आश्रित हो वहाँ पीड़ा उत्पन्न करता है, उसे वातकंटक कहते हैं।

पाददाह–पैरों में दाह उत्पन्न होना (Burning Sensation)

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्तसहितोऽनिलः।
विशेषतश्चङ्क्रमतः पाददाहं तमादिशेत्॥

(सु.)

प्रकुपित वायु पित्त एवं रक्त के साथ मिलकर पैरों में दाह उत्पन्न करता है, यह दाह विशेषकर चलते समय प्रतीत होता है।

पादहर्ष–पैरों में झनझनाहट (Tingling sensation) उत्पन्न होना या सुन्नता (Numbness) होना।

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां चापि सुप्तकौ।
पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपतः॥

(सु.)

प्रकुपित वायु जब कफ के साथ मिलकर पैरों में हर्ष (झनझनाहट) एवं सुप्तता उत्पन्न करता है तब इसे पादहर्ष कहते हैं।

ये दोनों लक्षण Peripheral neuritis की Condition में मिलते हैं।

उपरोक्त दोनों पाददाह एवं पादहर्ष के लक्षण Diabetes Mellitus, vit. B Deficency, Lumbar Spondylitis आदि कई व्याधियों में मिल सकते हैं।

खल्ली–हाथ-पैरों में ऐंठन आना (Cramps) को खल्ली कहते हैं।

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी।

(च.चि.)

पाद-जंघा-उरु तथा हस्त के मूल में ऐंठन उत्पन्न करने वाली व्याधि खल्ली कहलाती है।

मूक-मिन्मिन-गद्गद्

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः।
नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिन्मिनगद्गदान्॥

(सु.)

कफयुक्त प्रकुपित वायु शब्दवाहिनी धमनी में अवरोध उत्पन्न कर मनुष्य की बोलने की शक्ति में अवरोध उत्पन्न कर मूक, मिन्मिन एवं गद्गद्स्वरयुक्त बना देती है। मूकता अर्थात् पूरी तरह से बोलने में अक्षम–Aphonia, मिन्मिन अर्थात

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

नाक से बोलना Rhinophonia, गद्गद् अर्थात् हकलाकर बोलना, कुछ शब्दों को छोड़कर बोलना Disarthria.

जिह्वास्तम्भ

वाग्वाहिनी सिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः।
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता॥

(वा.नि.)

प्रकुपित वायु जब वाणी का वहन करने वाली सिरा (नाड़ी में आश्रित होकर जिह्वां को स्तम्भित कर देती है, तब इसे जिह्वास्तंभ कहते हैं।) इसके कारण अन्नपान ग्रहण करने एवं बोलने में असमर्थता उत्पन्न हो जाती है।

इसे Glossial Palsy कह सकते हैं।

हनुग्रह

प्रकुपित वायु जब हनुमूल में स्थित हो हनुबंधनों को शिथिल कर स्तब्धता युक्त एवं वेदनारहित विवृतास्यता उत्पन्न करता है अथवा हनु को जकड़ कर संवृतास्यता उत्पन्न करता है तब उसे हनुग्रह कहते हैं।

इसमें या तो मुख खुला ही रह जाता है (विवृतास्यता) या पूरी तरह से बंद हो जाता है, (संवृतास्यता) खुल नहीं पाता। जिसके कारण से भोजन चबाने में तथा बोलने में कठिनाई होती है।

आचार्य वाग्भट के अनुसार–

जिह्वांनिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघातातः।
कुपितो हनुमूलस्थः स्त्रंसयित्वाऽनिलो हनुम्॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम्।
हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम्॥

(वा.नि. 15)

हनुग्रह के कारण बताए हैं–अतिजिह्वां निर्लेखन से, शुष्क पदार्थों के अतिभक्षण से तथा अभिघात से वातप्रकोप होकर हनुग्रह होता है।

यह Tempromandibular joint के Dislocation की अवस्था है या इसे Lock jaw या trismus भी कह सकते हैं जिसमें हनु में जकड़ाहट उत्पन्न होकर गति का अवरोध हो जाता है। Posterior dislocation की अवस्था में संवृतास्यता

उत्पन्न होती है तथा Anterior dislocation में विवृतास्यता उत्पन्न होती है। दोनों ही अवस्थाओं में रोगी बोलने या चबाने में अक्षम होता है।

सिराग्रह

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः सिराः।
रुक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्यात्सिराग्रहः॥

(वा.नि. 15)

वायु प्रकुपित होकर रक्त में आश्रित होकर जब ग्रीवा की सिराओं को रुक्ष, वेदनायुक्त एवं कृष्ण वर्ण की हो जाती है, तब इसे सिराग्रह कहते हैं, एवं यह असाध्य है।

आध्मान-प्रत्याध्मान

आध्मान

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम्।
आध्यानमिति तं विद्याद्घोरं वातनिरोधजम्॥

(सु.नि. 1)

वायु के निरोध के कारण जब उदर में आटोप, तीव्रपीड़ा एवं उदर में फुलाव उत्पन्न होता है उसे आध्मान कहते हैं। यह अत्यंत भयंकर अवस्था है।

प्रत्याध्मान

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम्।
प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम्॥

(सु.नि.)

उपरोक्त आध्मान के लक्षण ही जब पार्श्व एवं हृदयप्रदेश को छोड़कर केवल आमाशय में प्रकट होते है तब उसे प्रत्याध्मान कहते हैं। यह कफावृत्त वायु की अवस्था होती है।

आध्मान को General tympanitis, Distension of Abdomen की condition एवं प्रत्याध्मान को Gastric tympanitis या Dilatation of Stomach कह सकते हैं।

आटोप–उदर में वात के कारण होने वाली गुड़गुड़ाहट आटोप कहलाती है, इस अवस्था में मलप्रवृत्ति सामान्य रहती है।

आनाह–मलमूत्र के अवरोध से युक्त जब उदर में आध्मान होता है तब उस अवस्था को आनाह कहते हैं।

तूनी-प्रतितूनी

तूनी

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता।
भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः॥

(सु.नि. 1)

मलाशय या मूत्राशय से प्रारंभ होने वाली वेदना जो गुदा एवं उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) का भेदन करती हुई नीचे की ओर जाती है तूनी कहलाती है।

प्रतितूनी

गुदोपस्थोत्थिता या तु प्रतिलोमं प्रधाविता।
वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते॥

(सु.नि. 1)

गुदा या उपस्थ से प्रारंभ होकर उपर की ओर पक्वाशय को तीव्र वेग से जाने वाली वेदना प्रतितूनी कहलाती है।

अष्ठीला-प्रत्यष्ठीला

एक प्रकार की ग्रन्थि जो उदर में उत्पन्न होती है। अष्ठीला सिलबट्टे (मसाले पीसने वाला पत्थर) को कहते हैं।

नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदि वाऽचलः।
अष्ठीलावध्दनो ग्रन्थिरुर्ध्वमायत उन्नतः।
वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम्॥
एतामेव रुजोपेतां वातविण्मूत्ररोधिनीम्।
प्रत्यष्ठलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम्॥

(सु.नि. 1)

अष्ठीला

नाभि के अधः प्रदेश में चल या अचल ग्रंथि को अष्ठीला कहते हैं। यह उपर की ओर विस्तृत एवं उन्नत होती है। इससे मल-मूत्र का मार्ग अवरुद्ध हो जाता हे। इसे ही वाताष्ठीला भी कहते हैं।

प्रत्यष्ठीला

उपरोक्त अष्ठीला ही जब उदर में स्थित हो एवं तिरछी हो, वेदनायुक्त एवं वात, मल एवं मूत्र का मार्ग अवरुद्ध करे तो इसे प्रत्यष्ठीला कहा जाता है।

. Prostate gland enlargement की अवस्था को अष्ठीला प्रत्यष्ठीला कह सकते हैं। इसके अलावा उदरगत अन्य अर्बुद (Tumor) ग्रंथि (Lump) आदि को भी इसके अंतर्गत लिया जा सकता है।

कंपवात

संपूर्ण शरीर में कंपन या केवल सिर के कंपन को कंपवात या वेपथु कहते हैं।

सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः।

Tremors की अवस्था है, Shaking Palsy कह सकते हैं।

ऊर्ध्ववात

अधः प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन वा।
करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातः स उच्यते।।

कफ या अन्य वायु द्वारा आवृत्त या अवरोधित वायु प्रतिलोम होकर अत्यधिक उद्गार (डकारों) को उत्पन्न करता है इसे ऊर्ध्ववात कहते हैं।

वातव्याधियों के उपद्रव

आचार्य सुश्रुत ने वातव्याधि के निम्न उपद्रव बताए हैं–1. विसर्प 2. दाह 3. अत्यंत पीड़ा 4. संग (अंगों का संग या मल-मूत्रादि का संग) 5. मूर्च्छा 6. अरुचि 7. अग्निमांद्य

वातव्याधियों की साध्यासाध्यता

आचार्य योगरत्नाकर वातव्याधियों को सामान्यतः असाध्य ही मानते हैं उनके

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

अनुसार वातव्याधियाँ साधारणतः (प्रायः) असाध्य ही होती है, कभी-कभी दैवयोग से साध्य होती है। इसकी चिकित्सा अनुमान से ही होती है न कि प्रतिज्ञा से।

वातव्याधिरसाध्योऽयं दैवयोगेन सिध्यति।
अनुमानेन कुर्वन्ति चिकित्सां न प्रतिज्ञया॥

आचार्य चरक कहते है हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेप, पक्षघात तथा अपतानक रोग यत्न से दीर्घ काल तक चिकित्सा करते रहने पर कभी ठीक हो जाते है कभी नहीं भी होते। रोगी यदि बलवान हो एवं उपद्रवग्रस्त न हो तो साध्य होते हैं।

उपद्रवयुक्त एवं बल-मांसहीन रोगी के पक्षाघात आदि विकार घातक होते हैं।

जिस रोगी का शरीर शोथयुक्त हो गया हो, जिसकी स्पर्शज्ञान की शक्ति नष्ट हो गई हो, अंग-भग हो गए हो, जो कंपवात एवं आध्मान से पीड़ित हो, तीव्र वेदनायुक्त एवं व्याकुल हो ऐसे रोगी की वातव्याधि से मृत्यु निश्चित समझे (अरिष्ट लक्षण)।

VI. शुक्रवह स्त्रोतस के रोग

क्लैब्य

स्त्री एवं पुरुष में होनी वाली प्राकृत प्रजनन क्षमता का जब ह्रास हो जाता है, उस अवस्था को पुरुषों में "क्लैब्य" या "नपुंसकता" एवं स्त्रियों में "वंध्यत्व" कहा जाता है। आचार्य चरक ने इनका चिकित्सास्थान 30वें अध्याय में विस्तृत वर्णन किया है। माधव निदान परिशिष्ट में इसका वर्णन मिलता है।

क्लैब्य/नपुंसकता–मैथुन कार्य में असमर्थ पुरुष को नपुंसक एवं उसके भाव को "क्लैब्य" (नपुंसकता) कहते हैं।

क्लिबता के 4 प्रमुख भेद कारण के अनुसार बताए गए हैं–

1. बीजोपघात से
2. ध्वजोपघात से
3. जरा या वृद्धावस्था के कारण
4. शुक्रक्षय से

बीजोपघातात्तदनुध्वजोपघाताज्जरातोऽपि च शुक्रसंक्षयात्।
इत्थं प्रजायेत चतुर्विधं हि क्लैव्यं पुराणैर्ऋषिभिः प्रदिष्टम्॥

(मा. परिशिष्ट)

क्लैब्य के सामान्य लक्षण

1. मैथुन की इच्छा होने पर भी या प्रिय स्त्री के पास होने पर भी लिंग शैथिल्य के कारण वह संभोगार्थ स्त्री के पास नहीं जा पाता।
2. यदि वह संभोग हेतु प्रवृत्त भी हो जाता है तो उसका सांस फूलने लगता है, शरीर पसीने से तर हो जाता है।
3. वह संभोग में विफल, शिथिल लिंग वाला एवं वीर्यहीन होता है।

यः स्यादशक्तः सुरते मनुष्यः स क्लीब उक्तः किल वैद्यवृन्दे।
क्लैव्यं तु तद्भाव इहोपदिष्टं तल्लक्ष्य सामान्यमथो ब्रवीमि॥

(मा. परिशिष्ट)

1. बीजोपघातजन्य क्लैब्य या नपुंसकता

बीज अर्थात् शुक्र के उपघात के कारण एवं लक्षण–

बीजोपघातजन्यक्लैब्य के कारण	बीजोपघातजन्यक्लैब्य के विकार
1. शीत, रुक्ष, अल्प, सड़े हुए, विरुद्ध अन्न के सेवन एवं अजीर्ण में भोजन करने से। 2. शोक, चिंता, भय एवं त्रास से 3. अति स्त्री प्रसंग (अति मैथुन) के कारण 4. अभिचार कर्म से 5. स्त्री के प्रति विश्वास या प्रेम भाव के अभाव से 6. रसादि के क्षय एवं वातादि दोषों के वैषम्य से 7. पंचकर्म का ठीक से न होने के कारण बीजोपघात होता है।	1. पांडुवर्णता, दुर्बलता 2. अल्प प्राण एवं अल्प हर्ष वाला (स्त्रियों के प्रति आसक्ति) 3. हृदरोग, पांडु, तमकश्वास, कामला, श्रम, वमन, अतिसार, उदरशूल एवं कास तथा ज्वर से पीड़ित रहता है।

2. ध्वजोपघातजन्य क्लैब्य या नपुंसकता

ध्वज अर्थात् पुरुष लिंग के उपघात (विकार) के कारण एवं लक्षण (विकार)

ध्वजभंगजन्यक्लैब्य के कारण	ध्वजभंगजन्यक्लैब्य के विकार (लक्षण)
1. अत्यंत अम्ल, लवण, क्षार एवं विरुद्ध भोजन करने से 2. अत्यधिक जल पीने, विषम भोजन करने 3. पिष्टान्न सेवन एवं गुरु भोजन करने से 4. दही, दूध, आनूप मांस का अत्यधिक सेवन 5. रोग द्वारा शरीर कृश हो जाने से 6. कन्या के साथ मैथुन 7. अयोनिगमन (गुद मैथुन आदि) 8. योनि रोग से पीड़ित स्त्री तथा जो स्त्री बहुत समय से मैथुन न की गई हो; रजस्वला स्त्री, दुर्गंधित योनियुक्त स्त्री, विकृत योनि, जिसकी योनि में निरंतर स्त्राव, निकल रहा हो, ऐसी स्त्रियों के	1. लिंग शोथ युक्त, वेदना एवं लालिमायुक्त 2. तीव्र स्फोटों (फोड़े) की उत्पत्ति एवं पाक 3. लिंग के ऊपर मांसवृद्धि एवं व्रण की उत्पत्ति 4. लिंग के पुलाकोदक (कच्चे धान का जल) [illegible] के समान श्याव या अरुण वर्ण का स्त्राव 5. लिंग में वक्रता, कठोरता 6. रोगी ज्वर, तृष्णा, भ्रम, मूर्च्छा, वमन से पीड़ित 7. व्रण से रक्त, कृष्ण, नील एवं मलिन रक्त का स्त्राव 8. अग्नि से दग्ध की भाँति तीव्र वेदना एवं

साथ मैथुन करने से।	दाह 9. यह दाह एवं वेदना, मूत्राशय, अंडकोष, सेवनी एवं वंक्षण प्रदेश में विशेष होती है।

3. जराजन्य क्लैब्य या नपुंसकता

आचार्यों ने वय की तीन अवस्थाएँ मानी है–जघन्य, मध्यम एवं प्रवर। बढ़ी हुई अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था (जरावस्था) में प्राय: स्वभावत: शुक्र क्षीण हो जाता है जिसके कारण जराजन्य क्लैब्य उत्पन्न होता है।

जराजन्यक्लैब्य के कारण	जराजन्य क्लैब्य के लक्षण (विकार)
1. रसादिधातुओं के क्षय से	1. धातुओं का अत्यंत क्षय हो जाता है।
2. वृष्य औषधियों के असेवन से	2. शरीर के बल का ह्रास हो जाता है। व्यक्ति दुर्बल हो जाता है
3. बल, वीर्य, इन्द्रियों के क्रमश: क्षय से	3. शरीर विवर्ण एवं व्यक्ति दीन हो जाता है
4. आयु के क्षय से	4. शीघ्र ही अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है।
5. आहार का पूर्णरूप से सेवन न करने से	
6. अधिक परिश्रम से	
7. बिना श्रम के ही अत्यंत थकावट होने से	

4. शुक्र क्षयजन्य क्लैव्य या नपुंसकता

शुक्र के क्षय से होने वाली क्लिबता के कारण एवं लक्षण–

शुक्रक्षयजन्य क्लैब्य के कारण	शुक्रक्षय जन्य क्लैब्य के लक्षण
1. अतिचिंता, शोक, क्रोध, भय, ईर्ष्या, उद्वेग, उत्कंठा, मद युक्त व्यक्ति	1. शुक्रक्षय जन्य भयंकर व्याधियों से ग्रस्त रहता है।
2. कृश होते हुए भी रुक्षअन्नपान एवं औषधि का निरंतर सेवन करने वाले व्यक्ति	2. अंत में मृत्यु को प्राप्त होता है।
3. दुर्बल होते हुए भी भोजन न करने वाला	3. लिंग से पिच्छिल एवं पांडु वर्ण का स्त्राव
4. असात्म्य अन्नपान का सेवन करने वाला	4. लिंग के शोथ में कभी मंदता शीतलता, एवं स्त्राव में अल्पता हो जाती है।
5. उपरोक्त कारणों से रस धातु का अत्यंत क्षय हो जाता है।	5. पाक कभी देर से कभी शीघ्र होता है।
	6. पाक के पश्चात् क्रिमि की उत्पत्ति।
6. रसक्षय के पश्चात् उत्तरोत्तर शुक्रपर्यंत सभी धातुओं का क्षय हो जाता है।	7. लिंग प्राय: क्लेद युक्त एवं सड़ी। हुई गंध युक्त।
7. शुक्र क्षय होने के पश्चात् भी जो मैथुन में	8. मणि, मूत्रेंद्रिय, अंडकोश गलकर गिर जाते

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

सक्रिय होता है उसका शुक्र अत्यन्त क्षीण हो जाता है। 8. पशुओं के साथ मैथुन करने से 9. मूत्रेन्द्रिय में आघात लगने 10.इंद्रिय (लिंग) का प्रक्षालन न करने से 11.मूत्रेंद्रिय पर दंत, नख, शस्त्र आदि से क्षत होने से 12.काष्ठ के प्रहार, लिंग के पीस जाने से 13.शूक (लिंग बढ़ाने की दवा) के अधिक प्रयोग से 14.शुक्र के वेग को रोकने से।	हैं।

कुछ आचार्य ध्वजभंग के पाँच भेद मानते हैं–

1. वातजध्वजभंग
2. पित्तजध्वजभंग
3. कफजध्वजभंग
4. रक्तजध्वजभंग
5. सन्निपातजध्वजभंग

भेदानुसार लक्षण

वातजध्वज भंग	पित्तजध्वज भंग	कफजध्वज भंग	रक्तजध्वज भंग	सन्निपातज ध्वजभंग
लिंग में तीव्र वेदना लालिमा एवं शोथ	स्फोटों की उत्पत्ति एवं लिंग में पाक	लिंग के ऊपर मांसवृद्धि, व्रण की शीघ्र उत्पत्ति एवं अत्यधिक वृद्धि पुलाक जल के समान श्याव एवं अरुण वर्ण का स्त्राव लिंग का वर्तुलाकार होना एवं कठिन होना	व्रण से रक्त, आविल, नील एवं कृष्ण वर्ण का रक्त बहना। रोगी का वमन, ज्वर मूर्च्छा, भ्रम एवं तृष्णा से ग्रस्त होना	बस्ति, सेवनी, अंड-कोष वंक्षण में तीव्र पीड़ा युक्त ज्वर एवं दाह, पांडु वर्ण का एवं पिच्छिल स्त्राव मंद एवं निश्चलशोथ, स्त्राव की अल्पता देर से पाक, शीघ्र शांती, लिंग (व्रण) में क्रिमिकी उत्पत्ति, क्लेद युक्त, शव गंधी, लिंग का मुंड एवं अंडकोष फट जाते हैं।

जन्मजात नपुंसकता या क्लैब्य

आचार्य चरक ने माता-पिता के बीज दोष के कारण होने वाली जन्मजात क्लिबता का वर्णन किया है। माता पिता के बीजदोष से जब प्रकुपित दोष गर्भस्थ बालक के शुक्रवह सिराओं में आकर उसका शोषण कर देते है तब शुक्रवह सिरा सूख जाती है जिससे शुक्रवह स्त्रोत का नाश होकर शुक्र की उत्पत्ति ही नहीं हो पाती। ऐसा बालक जब पैदा होता है तो उसके बाहरी सब अंग समयानुसार विकसित होते है, परंतु वह मैथुन करने में असमर्थ होता है। अतः पुरुष होते हुए भी अपुरुष (नपुंसक) रह जाता है।

क्लैब्य की साध्यसाध्यता

चारों प्रकार के क्लैब्य असाध्य माने गए हैं। कुछ आचार्यों ने क्षयजन्य एवं ध्वजभङ्ग जनित क्लैब्य को असाध्य माना है। अंडकोष के निकाल लेने एवं लिंग के कट जाने से उत्पन्न नपुंसकता को भी असाध्य माना है।

उपरोक्त क्लैब्य या नपुंसकता के अलावा ग्रंथों में और भी पुरुषों में उत्पन्न नपुंसकता के विकार मिलते हैं जो निम्न हैं–

1. **आसेक्य**–पिता के वीर्य की अल्पता से उत्पन्न बालक नपुंसक होता है उसे आसेक्य कहते हैं। युवावस्था को प्राप्त होने पर वह अन्य मनुष्य या प्राणी के शुक्र के भक्षण (चाटने) से अपने लिंग का उत्थान करने की शक्ति प्राप्त करता है।
2. **सौगंधिक**–दुर्गंधित योनि वाली स्त्री से उत्पन्न होने वाला बालक सौगंधिक संज्ञक नपुंसक कहलाता है। लिंग या भग की गंध को सूँघकर ही उसमें मैथुन क्रिया हेतु उत्साह उत्पन्न होता है।
3. **कुंभीक**–जो पुरुष अपनी गुदा में प्रथम दूसरे पुरुष द्वारा मैथुन करवा कर पश्चात स्त्री से मैथुन करने में समर्थ होता है वह कुंभीक नामक नपुंसक कहलाता है।
4. **ईर्ष्यक**–जो व्यक्ति दूसरे को मैथुन क्रिया में रत देख स्वयं मैथुन में प्रवृत्त होता है वह ईर्ष्यक नामक नपुंसक कहलाता है।
5. **षण्ढ**–जो व्यक्ति स्त्री के समान स्वयं नीचे रहकर ऊपर से स्त्री द्वारा मैथुन क्रिया करवता है, उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला बालक दिखने में स्त्री के समान आकृति एवं चेष्टा वाला होता है। और यदि

कन्या उत्पन्न होती है तो वह पुरुष के समान चेष्टा एवं आकृति वाली होती है।

6. **द्विरेत**–समप्रमाण में मिलित दूषित या उपतप्त-शुक्र एवं शोणित से उत्पन्न संतान द्विरेतः नामक नपुंसक कहलाती है। उनकी चेष्टा एवं आकृति में स्त्री एवं पुरुष दोनों मिश्रित लक्षण होते हैं।
7. **पवनेंद्रियत्व**–गर्भस्थ बालक के शुक्राशय को जब वायु दैववश नष्ट कर देती है तब उसे पवनेन्द्रियता उत्पन्न हो जाती है अर्थात् शिश्नोत्थान होने पर भी उससे शुक्र का स्त्राव नहीं होता (केवल वायु होती है) इस नपुंसकता को पवनोन्द्रियत्व कहा गया है।
8. **संस्कारवाह**–दूषित वायु जब पुरुष के शुक्राशय द्वार को अधिक विघट्टित करते हुए दूषित करता है तब उसे संस्कारवाह कहा जाता है। योग्य चिकित्सा करने पर यह नपुंसकता नष्ट हो सकती है।
9. **मंदवेग एवं अल्पहर्ष**–मंदवेग एवं अल्पहर्ष वाली नपुंसकता के हेतु मंदबीज एवं अल्पबीज है।
10. **वक्रि**–मैथुन के समय यदि स्त्री अपने अंगों को विषमरूप से रखती है तथा यदि पुरुष बीज दुर्बल हो तो उत्पन्न होने वाला बालक वक्रि होता है।
11. **ईर्ष्यारति**–जब मंद हर्ष वाले स्त्री-पुरुष ईर्ष्या से युक्त होकर मैथुन में प्रवृत्त होते है तब उसके परिणामस्वरूप जो बालक उत्पन्न होता है वह ईर्ष्यारति कहलाता है।
12. **वातिकषण्ढ**–वात एवं पित्त के कारण जब दोनों अंडकोष कदाचित् नष्ट हो जाते है तब उसे वातिकषण्ढ कहते हैं।
13. **मानस क्लैब्य**–द्वेषपात्र स्त्री के संभोग से जो नपुंसकता उत्पन्न होती है वह मानसक्लैब्य कहलाती है।

वंध्यत्व

स्त्री में प्रजननक्षमता का ह्रास या अंभाव वंध्यत्व कहलाता है। केवल हारीत संहिता में इसका विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य सुश्रुत ने योनिरोगांतर्गत 'वन्ध्या योनि व्यापद्' में तथा आचार्य चरक ने 'बीजांश दुष्टि' के अंतर्गत वन्ध्या का उल्लेख किया है। आचार्य काश्यप ने जातहारिणियों का उल्लेख किया है।

वन्ध्यत्व के विभिन्न कारण–

1. गर्भोत्पत्ति के लिए आवश्यक षड् भावों में से किसी एक में भी विकार होना।
2. मातृजादि भावों में से किसी एक में भी दूष्टि होना।
3. अतिबाला, वृद्धा, दीर्घकालीन रोग से पीड़ित, क्षुधा, शोक आदि मानसिक रोगों से स्त्री का पीड़ित होना।
4. मैथुन के समय स्त्री का पार्श्व स्थिति में (न्यूब्ज) रहना।
5. योनि के बाह्य भाग में स्थित समीरणा नाड़ी पर योनि से बाहर शुक्र के गिरने से।
6. विभिन्न योनि रोगों में दूषित योनि द्वारा बीज या गर्भ के अधारण करने से।
7. आर्तवदोष के कारण बीज के नष्ट हो जाने से।
8. योनि अर्श के उपद्रवस्वरूप आर्तव–नाश हो जाने से।
9. माता–पिता के बीज दोष से, पथ्यरस के असेवन, वेगविधारण योनिदोष (भेल)।
10. वात व्याधि से ग्रस्त एवं योनि दोष के कारण।
11. आचार्य चरक ने योनिदोष, मानसिक संताप, शुक्रदोष, असृग्–दोष, आहारदोष, विहार–दोष, अकाल योग एवं बल संक्षय एवं वातरोग गर्भधारण के अवरोधक बताए है।
12. आचार्य सुश्रुत ने आर्तवह स्त्रोतस्–वेध के लक्षणों में बन्ध्यत्व का उल्लेख किया है।
13. आचार्य हारीत ने बालावस्था, गर्भकोष–भंग एवं धातुक्षय तथा अजातरजसा स्त्री के साथ मैथुन से उत्पन्न गर्भस्थान एवं भग के संकोच को बंध्यत्व का कारण माना है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

14. **पित्तजक्लैब्य**–अम्ल, लवण, कटु एवं उष्ण पदार्थों का अत्यधिक सेवन करने वाले पुरुष का पित्त अत्यंत कुपित होकर शुक्रक्षय को उत्पन्न करता है उसे पित्तज क्लैब्य कहते हैं।
15. **शुक्रक्षयजक्लैब्य**–वाजीकरण का नित्य सेवन किए बिना जो पुरुष स्त्री रमण करता है वह शुक्रक्षयजक्लैब्य से पीड़ित होता है।
16. **मेढ्रोगजक्लैब्य**–लिंगगत दीर्घकालीन रोग के कारण होने वाली क्लीबता मेढ्रोगज क्लैब्य कहलाती है।
17. **उपघातजक्लैब्य**–जो वीर्यवाहिनी सिरा लिंग के नीचे रहती है, उसके कट जाने से जो क्लैब्य होता है उसे उपघातज क्लैब्य कहते हैं। यह असाध्य होता है।
18. **शुक्रस्तम्भजक्लैब्य**–जिसके शरीर में अतुल्य बल होकर भी प्राय: जो ब्रह्मचर्य रखने के कारण या चित्त का निरोध करने के कारण जो क्लैब्य होता है वह शुक्रस्तम्भजक्लैब्य कहते हैं।
19. **सहज क्लैब्य**–जो क्लैब्य दुर्दैव के कारण जन्म से ही हो उसे सहज क्लैब्य कहते हैं। यह असाध्य होता है।

वन्ध्यत्व के भेद एवं लक्षण

माधव निदान परिशिष्ट में निम्न प्रकार से बन्ध्यत्व के भेद मिलाते हैं–नौ प्रकार के भेद प्राच्य आचार्यों ने किए है।

1. आदिवन्ध्या–अत्यंतपापकर्मों के फलस्वरूप
2. रक्तवन्ध्या
3. वातवन्ध्या
4. पित्तवन्ध्या
5. कफवन्ध्या
6. त्रिदोषवन्ध्या
7. भूतवन्ध्या
8. दैववन्ध्या
9. अभिचारवन्ध्या

इसके अलावा चार भेद और किए हैं–

1. गर्भस्त्राविणी
2. मृतपुत्रिका

3. कन्याप्रसूता
4. सकृत्प्रसूता (काकबन्ध्या)

महर्षि हारीत ने बन्ध्या के छः भेद किए है–

1. कामबन्ध्या
2. अनपत्या
3. गर्भस्त्रावी
4. मृतवत्सा
5. बलक्षय
6. अजातरजसा स्त्री के साथ मैथुन करने से गर्भाशय एवं भगसंकोच जन्य बंध्यत्व

काश्यप संहिता में पुष्पघ्नी जातहारिणी का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें स्त्री को रजोदर्शन तो समय पर होता है। परंतु बिना फल या गर्भ वाला होता है।

आचार्य चरक ने 3 प्रकार से वर्णित किया है–

1. **वंध्या**–अर्थात् किसी भी प्रकार की चिकित्सा करने पर भी गर्भाधान असंभव हो। इसे पूर्ण बंध्यत्व कह सकते हैं।
2. **अप्रजा**–इसमें वंध्यत्व के कारणों को दूर कर गर्भधारणा कराई जा सकती है। इसे प्राथमिक बंध्यत्व कह सकते हैं।
3. **सप्रजा**–जिस स्त्री में एक या अधिक संतान होने के उपरांत प्रजनन क्षमता का लोप हो गया हो उसे सप्रजा कहते है। इसे द्वितीयक बन्ध्यत्व कह सकते हैं।

साध्यासाध्यता

साध्य–हारीत द्वारा वर्णित अनपत्या आदि पाँचों प्रकार की वन्ध्या साध्य है, क्षीण धातु से उत्पन्न वन्ध्या भी साध्य है।

कष्टसाध्य–अजात रजसा के साथ मैथुन करने से उत्पन्न बन्ध्या कष्ट साध्य होती है।

असाध्य–चरकवर्णित वन्ध्या जन्मजात होने से असाध्य है।

साध्य–अप्रजा, सप्रजा, काश्यप द्वारा वर्णित-पुष्पघ्नी, अण्डघ्नी, दुर्धरा, कालरात्रि, जातहारिणी साध्य है।

याप्य–नाकिनी जातहारिणी

असाध्य–वश्यजातहारिणी

VII. प्राणवह स्त्रोतस के रोग

कास

ग्रंथों में कास एक प्रमुख रोग के रूप में भी वर्णित है एवं कई व्याधियों में एक लक्षण के रूप में भी इसका उल्लेख मिलता है। कास जिसे हम आम भाषा में खांसी कहते है निरुक्ति 'कासृ कुशब्दे' से हुई है। जिसका अर्थ है–'कुशब्द' की उत्पत्ति।

'कसनात् कासः कस् गतिशातनयोः' इस धातु से उर्ध्वगति अर्थ में कास की व्युत्पत्ति होती है।

'कसति शिरःकण्ठादूर्ध्व गच्छति वायुरिति कासः।' वायु कण्ठ से ऊपर सिर की ओर जाता है अतः कास कहा है।

कास के हेतू

धूमोपघाताद्रसतस्तथैव व्यायामरुक्षान्ननिषेवणाच्च।
विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव॥

(मा. नि.)

1. धूम (धुआँ)
2. धूल (रज)
3. रस (आमरस का मुख में आना)
4. अतिव्यायाम
5. रुक्षान्न का सेवन
6. भोजन का विमार्ग में जाना (अन्नमार्ग में न जाकर श्वास मार्ग में जाना)
7. वेगावरोध–मलमूत्रादि का एवं विशेषतः छींक को रोकने से कास की उत्पत्ति होती है।

उपरोक्त सारे हेतु वात प्रकोपक है। कास की उत्पत्ति प्रमुखतः वात के प्रकोप के कारण तथा कफ द्वारा मार्गावरोध से होती है।

कास की संप्राप्ति

प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः स भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः॥

(मा. नि.)

उपरोक्त कारणों से प्रकुपित प्राण वायु उदान के साथ मिलकर फूटे हुए कांसे के पात्र के समान आवाज करता हुआ सहसा वेग के साथ मुख से दोष सहित निकलता है, इस रोग को आचार्यों द्वारा कास संज्ञा दी गई है।

कास पूर्वरूप

पूर्वरुपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता।
कण्ठे कण्डू श्च भोज्यानामवरोध श्च जायते॥

(च.चि. 22)

1. गले एवं मुख में शूक भर जाने के समान वेदना होना।
2. कण्ठ में कंडू होना।
3. भोजन का अवरोध होना (गले में अटकना)।

इनके अलावा आचार्य सुश्रुत ने गले एवं तालु में लेप की प्रतीती, शब्दवैषम्य, अरोचक एवं अग्निनाश ये भी कास के पूर्वरूप बताए है।

कास के भेद

पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः।
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम्॥

(अ.नि. 3)

कास के पाँच भेद बताए गए हैं।

1. वातज कास
2. पित्तज कास
3. कफज कास
4. क्षतज कास
5. क्षयज कास

ये उत्तरोत्तर बलवान होते जाते है तथा उपेक्षा करने पर अंततः सभी कास क्षयज कास में परिवर्तित हो सकते हैं।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

कास के भेदानुसार लक्षण

वातज कास	पित्तज कास	कफज कास	क्षतज कास	क्षयज कास
1. रोगी को हृदय, शंख, सिर, उदर, पार्श्व में शूल होता है। 2. मुख कृश सूखा हुआ होता है। 3. बल, स्वर एवं ओज क्षीण हो जाते हैं। 4. कास के निरंतर वेग आते रहते हैं। 5. आवाज फटी हुई सी या स्वरभेद 6. खांसी सूखी होती है।	1. उरः प्रदेश में दाह 2. ज्वर 3. मुखशोष 4. तिक्तास्यता 5. तृष्णा 6. पित्त के साथ पीतवर्ण का एवं कटु रसात्मक वमन 7. संपूर्ण शरीर में पांडुता एवं दाह	1. मुख कफ से लिप्त 2. शरीर में शिथिलता 3. शिरोवेदना 4. संपूर्ण शरीर कफ से भरा प्रतीत होना 5. अरुचि 6. गुरुता 7. कण्डु 8. खांसने पर घन कफ निकलता है।	अतिसाहस आदि जो उरः क्षत के कारण बताए है उनसे क्षतज कास उत्पन्न होता है। 1. प्रथम शुष्क कास होता है पश्चात् खांसी के साथ रक्त भी आने लगता है। 2. कण्ठ में पीड़ा 3. उरः प्रदेश में वेदना, तोद 4. उरः प्रदेश एवं पार्श्व में स्पर्शासहता, भेद एंवं दाह 5. पर्वभेद, ज्वर, श्वास, तृष्णा 6. स्वरभेद 7. कबूतर के समान कंठ से आवाज	विषमाशन आदि राजयक्ष्मा के उत्पादक कारणों से ही क्षयज कास उत्पन्न होता है। 1. संपूर्ण शरीर में वेदना 2. ज्वर 3. दाह 4. मोह 5. शरीर शुष्क या कृश हो जाता है। 6. बल एवं मांस क्षीण हो जाता है। 7. खांसी के साथ रक्त एवं पूय निकलता है।

कास की साध्यासाध्यता

1. क्षतज एवं क्षयज कास क्षीण व्यक्तियों में असाध्य तथा बलवान रोगियों में कभी साध्य एवं कभी याप्य होता है।
2. नवीन उत्पन्न क्षयज एवं क्षतज कास चतुष्पाद की सम्पत्ति होने पर कभी-कभी साध्य भी हो जाते हैं।
3. वृद्धों में होने वाला कास याप्य होता है।
4. वातिक, पैत्तिक, कफज कास साध्य होते हैं।
5. क्षयज कास प्रायः असाध्य होता है।

श्वास

सामान्य श्वास-प्रश्वास की क्रिया में जब बाधा उत्पन्न होती है तब इसे श्वास रोग कहा जाता है। सामान्यतः श्वास का अर्थ सांस लेना होता है जब यह श्वास प्रक्रिया कष्टपूर्वक होती है तब श्वास रोग कहलाती है। श्वास एवं हिक्का रोग प्राणवह स्त्रोतस के अत्यधिक गंभीर एवं प्राणघातक रोग बताए गए हैं। इनके हेतु भी समान बताए हैं। आचार्य चरक ने श्वास एवं हिक्का का वर्णन एक साथ एक ही अध्याय में किया है। ये दोनों ही प्राणघातक है एवं मृत्यु के समय अवश्य मिलते हैं।

कास की तरह श्वास का वर्णन भी स्वतंत्र प्रधान व्याधि के रुप में तथा कई व्याधियों में एक लक्षण या उपद्रव स्वरूप मिलता है। श्वास रोग में भाथी धौंकने के समान वायु निकलती है।

निदान–हिक्का एवं श्वास के सामान्य निदान एक जैसे बताए गए हैं जिनका वर्णन हिक्का रोगान्तर्गत किया गया है।

श्वास रोग की सम्प्राप्ति

यदा स्त्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासन् करोतिसः॥

(च.चि. 17/45)

कफ के कारण अवरोधित एवं विमार्गगामी वायु प्राणवाही स्त्रोतों को अवरुद्ध कर सब ओर व्याप्त होकर श्वास रोग को उत्पन्न करता है।

श्वास रोग के पूर्वरूप

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीड़ा शूलमाध्मानमेव च।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शङ्खनिस्तोद एव च॥

1. हृद प्रदेश में पीड़ा
2. पार्श्वशूल
3. आध्मान
4. आनाह
5. मुख की विरसता
6. शंख प्रदेश में तोद

ये श्वास के पूर्वरुप होते है।

श्वास रोग के भेद

श्वास के पाँच भेद बताए गए हैं–

महोर्ध्वाच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा।
भिधते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः॥

(सु.उ. 51)

1. महाश्वास 2. उर्ध्वश्वास 3. छिन्नश्वास 4. तमकश्वास एवं क्षुद्रश्वास

हेतु-लक्षण-दोष प्राधान्य आदि की भिन्नता से यह एक होते हुए भी पाँच भेद किए गए हैं–

वातधिको भवेत् क्षुद्रस्तमकस्तु कफोद्भवः।
कफवाताधिक श्चैव संसृष्टश्छिन्नसंज्ञकः।
श्वासो मारुतसंसृष्टो महानूर्ध्वस्ततो मतः॥

(सु. 3.51)

क्षुद्रश्वास–वात की प्रधानता
तमकश्वास–कफ की प्रधानता
छिन्नश्वास–कफ एवं वायु की प्रधानता
महान एवं उर्ध्व श्वास–वात की प्रधानता

भेदानुसार लक्षण

श्वास भेद	लक्षण
1. महाश्वास	1. उन्मत्त सांड के फुफकारने (गर्जना) की तरह आवाज करता हुआ रोगी दुःख के साथ श्वास लेता है। 2. जिसका ज्ञान-विज्ञान लुप्त हो गया हो (संज्ञानाश) 3. नेत्र चंचल या विभ्रान्त हो गए हो। 4. मुख एवं नेत्र फैले हुए हो। 5. मूत्र एवं मल की बद्धता (अप्रवृत्ति) 6. शब्दों का उच्चारण रुक-रुक के कष्ट के साथ 7. दीन 8. श्वास की आवाज एवं प्रक्रिया दूर से ही प्रत्यक्ष 9. इससे रोगी की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।
2. उर्ध्वश्वास	1. जो रोगी बहिः श्वसन (सांस छोड़ना) तो देर तक करे परंतु जिसे अंतःश्वसन (अंदर खिंचना) में कष्ट हो।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

	2. कफ के द्वारा जिसके प्राणवहस्त्रोतो का मुख एवं मार्ग अवरुद्ध हो। 3. वायु का जिसमें तीव्र प्रकोप हो। 4. जिसकी दृष्टि उपर चढ़ी हो। 5. नेत्र चंचल हो, अनेक विकृतियों को देखता हो। 6. बार-बार मूर्च्छित हो रहा हो। 7. वेदना से पीड़ित। 8. मुख श्वेत पड़ गया हो। 9. अत्यंत बेचैन हो। 10. अन्तः श्वास कई बार रुक जाता है, उर्ध्व श्वास ठीक होता है। 11. तमः प्रवेश 12. बार-बार मूर्च्छित हो जाता हो। 13. शीघ्र ही प्राणों को हर लेता है।
3. छिन्नश्वास	1. रोगी पूरा जोर लगाने पर भी रुक-रुक कर श्वास लेता है। 2. हृदयादि मर्मस्थानों की वेदना से पीड़ित होने के कारण श्वास नहीं ले पाता। 3. अनाह, स्वेद एवं मूर्च्छा से पीड़ित। 4. बस्ति प्रदेश में दाह 5. नेत्र अश्रुओं से भरे हुए। 6. क्षीण श्वास 7. एक नेत्र में लालिमा 8. संज्ञानाश। 9. मुख का शुष्क होना। 10. विवर्णता। 11. प्रलाप। 12. यह रोगी शीघ्र प्राणत्याग कर देता है।
4. क्षुद्रश्वास	1. रुक्ष पदार्थों के सेवन या अति व्यायाम से सांस फूल जाती है। 2. यह अंगों को अधिक कष्ट नहीं देता। 3. वेग हल्के होते हैं। 4. अन्य श्वासों की तरह शरीर को अधिक पीड़ा नहीं देता। 5. प्राणों के लिए घातक नहीं। 6. खाने-पीने में कोई रुकावट नहीं होती। 7. इन्द्रियों को व्यथित नहीं करता। 8. किसी अन्य रोग को भी उपद्रवस्वरूप उत्पन्न नहीं करता। 9. यह साध्य होता है।
5. तमक श्वास	1. वायु विलोम होकर प्राणवह स्त्रोतों में पहुँचकर सिर एवं ग्रीवा

को जकड़ता हुआ कफ को उदीर्ण कर पीनस को उत्पन्न करता है।

2. उस कफ से अवरुद्ध हुआ वायु घुर्घर शब्द युक्त, अतितीव्र वेग वाले एवं प्राणों को कष्ट देने वाले श्वास (तमक) को उत्पन्न करता है।
3. रोगी अपने आप को अंधकार में प्रविष्ट हुआ मानता है।
4. तृष्णा से पीड़ित तथा निश्चेष्ट
5. बारंबार खाँसने से मूर्च्छा जैसी अवस्था
6. जब तक कफ (बलगम) न निकल जाए रोगी खांसते-खांसते व्यथित हो जाता है परंतु बलगम निकल जाने पर कुछ देर आराम महसूस करता है।
7. बार-बार खाँसी से आवाज बैठ जाता है। (कण्ठोध्वंस)
8. कष्ट से बोल पाता है।
9. लेटने से निद्रालाभ नहीं ले पाता अतः बैठने पर आराम मिलता है (आसीनो लभते सौख्यम्।)
10. उष्ण पदार्थों से आराम मिलता है। (उष्णं चैवाभिनन्दति)
11. आँखें सूजी हुई होती है।
12. ललाट पसीने से तर रहता है।
13. मुख सूखा रहता है।
14. बार-बार श्वास लेता है।
15. बादल, शीतल जल, ऋतु एवं वायु तथा कफवर्धक पदार्थों के सेवन से इसकी वृद्धि होती है।
16. यह याप्य होता है। नया होने पर साध्य भी होता है।

तमक श्वस के 2 भेद है–

1. प्रतमक	1. तमक श्वास में ज्वर एवं मूर्च्छा का अनुबंध होने पर उसे प्रतमक श्वास कहते हैं। 2. यह उदावर्त, धूल (रज), अजीर्ण, क्लिन्नकाय एवं वेगविधारण से उत्पन्न होता है। 3. इसमें पित्त का अनुबंध रहता है।
2. सन्तमक	जब यह श्वास तम (अंधकार या मानसिक दोष) से बढ़े एवं शीतोपचार से शांत हो तथा रोगी अपने आपको अंधकार में डूबता हुआ सा समझे तब उसे सन्तमक श्वास कहते हैं।

उपरोक्त पाँचों श्वास भेदों में उर्ध्वश्वास, महाश्वास एवं छिन्नश्वास असाध्य होने से अचिकित्स्य है, क्षुद्रश्वास विश्राम कर लेने से अपने आप ठीक हो जाता है केवल तमकश्वास ही चिकित्सा करने योग्य है।

श्वास की साध्यासाध्यता

क्षुद्रः साध्यो मतस्तेषां तमकः कृच्छ् उच्यते।
त्रयः श्वासा न सिद्धयन्ति तमको दुर्बलस्य च॥

(सु.उ. 51)

क्षुद्रश्वास–साध्य
तमक श्वास–कृच्छ्रसाध्य, दुर्बल रोगियों में असाध्य।
महाश्वास,
उर्ध्वश्वास,
छिन्नश्वास-असाध्य।

हिक्का

आचार्य चरक ने श्वास एवं हिक्का का वर्णन एक साथ किया है तथा उनके निदान आदि एक समान बताए है। हिक्का जिसे आम बोल चाल में हिचकी कहते हैं, का वर्णन कई व्याधियों में उपद्रव के रूप में भी मिलता है। श्वास एवं हिक्का दोनों व्याधियाँ गंभीरतम बताई गई है तथा मृत्युसमय में इन दोनों या एक की उपस्थिति अनिवार्य रूप से होती है। ऐसी मान्यता है।

हिक्का एवं श्वास के सामान्य निदान

1. विदाही अन्न के सेवन से।
2. गुरु अन्न के सेवन से।
3. विष्टम्भि, रुक्ष एवं अभिष्यन्दि भोजन से।
4. शीतल जलपान से, शीत आहार के सेवन से, शीतल स्थान में रहने से।
5. रज, धूम, आतप, तीव्र वायु से
6. अतिव्यायाम, अतिकार्य, अधिक भार उठाने, अधिक मार्ग चलने, वेगधारण करने से
7. अपतर्पण से

हिक्का, श्वास कास की उत्पत्ति होती है।

हिक्का निरुक्ति

हिक् पूर्वक 'कै शब्दे' धातु से हिक्का शब्द बनता है।

'हिगिति कृत्वा कायति शब्दायते'

जिसके कारण रोगी हिक्-हिक् करने लगे उसे हिक्का कहते हैं।

मुहुर्मुमुर्वायुरुदेति सस्वनो सकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन्।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून् यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः॥

(सु.उ. 50)

प्राणवायु उदानवायु के साथ प्रकुपित होकर यकृत-प्लीहा एवं आंत्र को वेग

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

से मुख द्वारा बाहर निकालता हुआ सा जब मुख की ओर आता है तब 'हिक्' शब्द की उत्पत्ति करता है तथा इस शब्द को उत्पन्न करते हुए प्राण को शीघ्र नष्ट करने वाला होने से इसे हिक्का कहते हैं।

संप्राप्ति

कफेनानुगतः सोदानः प्राणवायुर्यकृत्प्लीहान्त्राणि मुखमार्गाद् बहिः क्षिपन्निव स्वनं कुर्वश्च मुहुर्मुमुरुर्ध्व गच्छन् सन् हिगिति शब्द युक्तां हिक्कां करोति।

(मा. नि.)

कफ से युक्त प्राणसहित उदानवायु वेग के साथ यकृत, प्लीहा एवं आंत्र को मुख द्वारा बाहर निकालता हुआ सा जब पुनः पुनः हिक् शब्द को उत्पन्न करता है तो हिक्का रोग होता है।

मारुतः प्राणवाहीनि स्त्रोतांस्याविश्य कुप्यति।
उरःस्थः कफमुद्धूयं हिक्का श्वासान् करोति सः॥

(मा. नि.)

अपने कारणों से प्रकुपित वायु प्राणवाहि स्त्रोतसों में प्रविष्ट कर उरस्थ कफ को प्रकुपित कर हिक्का एवं श्वास को उत्पन्न करता है।

हिक्का के पूर्वरूप

कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता।
हिक्कानां पूर्वरुपाणि कुक्षेराटोप एव च॥

(च.चि. 21)

1. कण्ठ एवं उरः प्रदेश में गुरुता
2. मुख की कषायता एवं
3. कुक्षि में आटोप

ये हिक्का के पूर्वरूप है।

हिक्का के भेद

हिक्का पाँच प्रकार की बताई गई है–

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि॥

(सु.उ. 50)

कफ से युक्त वायु इन पाँच हिक्काओं को उत्पन्न करती है–

1. अन्नजा
2. यमला
3. क्षुद्रा
4. गम्भीरा
5. महती

आचार्य चरक ने यमला को "व्यपेता" कहा है।

भेदानुसार लक्षण

1. अन्नजा हिक्का	अत्यधिक अन्न या पान के सेवन से वायु सहसा पीड़ित होकर उर्ध्वगामी होकर जिस हिक्का को उत्पन्न करता है, उसे अन्नजा हिक्का कहते हैं। यह मंद स्वरूप की होती है, कुछ खाने या जलपीने से शांत हो जाती है। मिर्च आदि के सेवन से होती है।
2. यमला हिक्का चरकोक्त व्यपेता हिक्का	सिर एवं ग्रीवा का कंपन करती हुई एक बार में दो वेग (आवाज) के साथ होने वाली हिक्का यमला कहलाती है। यह जत्रु मूल से उत्पन्न होती है। भोजन के परिणाम के बाद बढ़ने वाली एवं अन्न पान से शांत होने वाली। प्रलाप, तृष्णा, मूर्च्छा, वमन, बेचैनी, जृम्भा, नेत्रस्त्राव आदि उपद्रवों से युक्त होती है तथा प्राणाघातक या कष्टदायक होती है।
3. क्षुद्रा हिक्का	यह जत्रुमूल से उत्पन्न होती है, इसके वेग हल्के होते हैं। कभी-कभी होती है। परिश्रम से बढ़ती एवं भोजन करने पर शांत हो जाती है। मृदु, कष्ट न देनी वाली, साध्य होती है।
4. गंभीरा हिक्का	यह नाभि से उत्पन्न होती है, घोर एवं गंभीर शब्द उत्पन्न करने वाली तथा अनेक उपद्रवों से युक्त होती है। यह प्राणनाशक होती है। यह असाध्य है।
5. महा हिक्का	मर्मो को पीड़ित करने वाली, संपूर्ण शरीर को कंपाने वाली एवं निरंतर बनी रहने वाली। यह सद्योमारक है। यह गंभीर मूल से उत्पन्न होती है, इसका वेग, शब्द एवं प्रवृत्ती तीव्र स्वरूप की होती है।

हिक्का की साध्यासाध्यता

साध्य–क्षुद्रा हिक्का एवं अन्नजा हिक्का।
कष्टसाध्य–यमला या व्यपेता हिक्का।

असाध्य

1. महती एवं गंभीरा हिक्का।
2. उपद्रवयुक्त व्यपेता हिक्का।
3. जिस रोगी में अत्यंत दोष प्रकोप हो।
4. जिसका शरीर अनशन से कृश हो गया हो।
5. चिरकालीन रोग से जिसका शरीर दुर्बल हो गया हो।
6. रोगी वृद्ध हो या अतिव्यवायि हो।
7. प्रलाप, तृष्णा, मोहयुक्त यमला हिक्का।
8. हिक्का के कारण जिसका शरीर फैल गया हो।
9. नेत्र उपर चढ़ गए हो या संकुचित हो गए हो।
10. अन्न में अरुचि हो एवं क्षीण हो गया हो।
11. अत्यधिक छींके आ रही हो।

उरःक्षत

उरः क्षत अर्थात् उरः प्रदेश या फुफफुस में क्षत का होना। साहसादि कारणों से उरःक्षत होता है। आचार्य चरक ने 'क्षतक्षीण' नाम से इसे वर्णित किया है तथा आचार्य सुश्रुत ने शोष के भेदों में उरःक्षत जनित शोष का वर्णन किया है। माधव ने भी शोष के अंतर्गत उरःक्षत जनितशोष एक भेद के रूप में वर्णित किया है।

निदान

उरःक्षत के निदानों का विस्तृत वर्णन मिलता है–

1. धनुष की प्रत्यंचा को अत्यधिक खींचने।
2. अत्यधिक भार उठाने।
3. अत्यंत बलवान व्यक्तियों के साथ युद्ध करने।
4. विषम स्थान से गिरने या ऊँचे स्थान से गिरने।
5. दौड़ते हुए वृषभ, घोड़े आदि को बलपूर्वक रोकने।
6. अत्यंत भारी शिला, काष्ठ, पत्थर आदि को उठाकर फेंकना।
7. अत्यंत उच्चस्वर में पढ़ने।
8. द्रुतगति से दूर तक चलने।
9. बड़ी नदी को तैरकर पार करने।
10. घोड़े आदि के साथ दौड़ने।
11. सहसा ऊँची या लंबी छलाँग लगाने।
12. दरे तक शीघ्रता से नृत्य करने।
13. इसी प्रकार के अन्य क्रूर कर्म करने
14. रुक्ष, अल्प, भोजन या अनशन करते हुए अति संभोग से।

संप्राप्ति

उपरोक्त कारणों से उरः प्रदेश में आघात लगने से वक्ष प्रदेश विदीर्ण हो जाता है जिससे उरःक्षत नामक व्याधि उत्पन्न होती है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

लक्षण

1. उरःशूल
2. पार्श्वशूल
3. शरीर सूखने लगता है।
4. शरीर में कंपन
5. वीर्य, बल, वर्ण, रुचि एवं अग्नि क्रमशः क्षीण होने लगती है।
6. ज्वर, बेचैनी, मन की दीनता, अतिसार, अग्निनाश हो जाता है।
7. दुष्ट, श्याव, दुर्गंधित, पीत, ग्रथित एवं अतिमात्रा में कास के साथ कफ निकलता है।
8. रक्तमिश्रित कफ निकलता है।
9. उरः क्षत का रोगी क्षत के कारण शुक्र एवं ओज के अत्यंत क्षय से अधिक क्षीण हो जाता है।

उरःक्षत का पूर्वरूप

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम्॥

अव्यक्त पूर्वरूप का होना उरःक्षत का विशिष्ट पूर्वरूप है।

उरःक्षत के विशिष्ट लक्षण

1. उरःप्रदेश में पीड़ा।
2. रक्तवमन।
3. विशिष्ट प्रकार की खाँसी होना।

साध्यासाध्यता

साध्य– लक्षण अल्प हो
अग्नि प्रदीप्त हो
रोग नया हो
रोगी बलवान हो।

याप्य– एक वर्ष पुराना

असाध्य–सभी लक्षणों से युक्त

शोष

शोष अर्थात् क्षय। अतः कई स्थानों पर शोष को राजयक्ष्मा के पर्याय के रूप में लिया गया है। माधव ने इसे राजयक्ष्मा से अलग मानते हुए इसका पृथक् वर्णन किया है। राजयक्षमा में क्षय या शोष के अलावा ज्वरादि अन्य लक्षण भी मिलते हैं जबकी शोष में धातुक्षयजन्य लक्षण प्रधानतया मिलते है।

विभिन्न कारणानुरुप शोष के विभिन्न भेद है–

व्यवायशोकवार्धक्यव्यामाध्वप्रशोषितान्।
व्रणोरःक्षत संज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः श्रृणु॥

(सु.उ. 41)

1. व्यवाय शोषी
2. शोक शोषी
3. वार्धक्य शोषी
4. व्यायाम शोषी
5. अध्व शोषी
6. व्रण शोषी
7. उरःक्षत शोषी

लक्षण

शोष	लक्षण
1. व्यवाय शोषी (अतिमैथुन के कारण)	–शुक्रक्षय के लक्षणों वाला –शरीर की पांडुवर्णता –पूर्व-पूर्व धातुओं का क्षय
2. शोकशोषी (अधिक शोक करने से)	–सोच में डूबे रहना –अंगों की शिथिलता –शुक्रक्षय को छोड़कर व्यवायशोषी के अन्य लक्षणों वाला
3. वार्धक्य (जरा) शोषी (वृद्धावस्था के कारण)	–शरीर में कृशता –बल, बुद्धि, वीर्य एवं इंद्रियों में दुर्बलता –शरीर में कंपन –भोजन में अरुचि –फूटे हुए कांसे के पात्र के समान हतस्वर –कफरहीत सूखी खाँसी –शरीर में गुरुता, अरति

	–नासा, मुख एवं नेत्र से निरंतर स्त्राव –मल की शुष्कता, मुख की कांति रुक्ष
4. व्यायाम शोषी (अतिव्यायाम से)	–उरः प्रदेश में क्षत को उरः क्षत के बाकी सारे लक्षण जैसे– –उरःशूल, पार्श्वशूल, श्वास, शुष्क कास आदि
5. अध्व शोषी (अतिमार्गगमन से)	–अंगों में शिथिलता –मुख की कांति झुलसी हुई सी –अंगों में सुप्तता –क्लोम, गल एवं मुख (आनन) में शुष्कता
6. व्रण शोषी	–रक्तक्षय, वेदना एवं भोजन में नियंत्रण के कारण क्षय होकर व्रणशोष होता है। –वेदनाधिक्य। –वर्ण रोपण नहीं होता।
7. उरः क्षत (साहसादि के कारण)	–उरःक्षत का विस्तृत वर्णन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। –मुख्य लक्षण–पार्श्वशूल, शरीर में कृशता, कंपन–कास कफ एवं रक्तमिश्रित, श्यावर्ण, दुर्गंधित, पीत, ग्रंथित होता है। –ज्वर, अतिसार, व्यथा, दीनता, –बल, वर्ण, रुचि एवं अग्नि का नाश

राजयक्ष्मा

नक्षत्रों के राजा चंद्रमा को सर्वप्रथम यह रोग हुआ था अतः इसे राजयक्ष्मा या "रोगराट" कहा जाता है। धातुओं का विशेष रूप से क्षय होने के कारण इसे "क्षय" भी कहा जाता है। धातुओं के अतिरिक्त शारीरिक बल, मांस, ओज आदि का भी क्षय होता है। तथा धातुओं का शोषण होने से "शोष" कहलाता है।

राजयक्ष्मा एक रोगसमूह है। इसमें कई सारे लक्षण मिलते है तथा प्रत्येक लक्षण एक स्वतंत्र रोग की तरह महत्त्व रखता है।

आचार्य सुश्रुत ने औपसर्गिक रोगों में राजयक्ष्मा का समावेश किया है अतः यह एक औपसर्गिक या संक्रमण जन्य व्याधि है। रोगी के प्रत्यक्ष संपर्क से, उसके साथ खाने-पीने सोने से उसके द्वारा उपयोग में लाई गई वस्तुओं का सेवन करने से यह एक से दूसरे व्यक्ति में फैलता है।

प्रसङ्गाद् गात्रसंस्पर्शान्निः श्वासात् सहभोजनात्।
सहशय्यासनाच्चापि गन्धमाल्यानुलेपनात्।।
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्।।

(सु.नि. 5/34)

राजयक्ष्मा के निदान

वेगावरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात्।।

(मा. नि.)

1. वेगविधारण (मलमूत्रादि अधावरणिय वेगों के धारण)
2. क्षय (रसरक्तादि धातुओं के क्षय)
3. साहस (अतिव्यवाय, अतिमार्गगमन आदि कार्य)
4. विषमाशन (विषम आहार के सेवन)

इन चार निदानों से त्रिदोषज राजयक्ष्मा की उत्पत्ति होती है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

राजयक्ष्मा की सम्प्राप्ति

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु।
अतिव्यवायिनोवाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः॥

(मा. नि.)

कफप्रधान दोषों द्वारा रसवाही स्त्रोतों के अवरुद्ध होने से उत्तरोत्तर धातुओं का क्षय या अतिमैथुन के कारण शुक्र का क्षय होकर पूर्व-पूर्व धातुओं का क्षय होकर संपूर्ण धातुओं के क्षय से ग्रस्त मनुष्य शोष को प्राप्त हो जाता है।

आचार्य चरकानुसार–

स्त्रोतसां सन्निरोधात् च रक्तादीनां च संक्षयात्।
धातूष्मणां चापचयात् राजयक्ष्मा प्रवृर्तते॥

(च.चि. 8/40)

आचार्य चरक ने राजयक्ष्मा के संप्राप्ति घटक में स्त्रोतसों में अवरोध, रक्तादी का क्षय एवं धातू की उष्मा का क्षीण होना बताया है।

इन उपरोक्त संप्राप्ति से दो प्रकार का राजयक्ष्मा दृष्टिगोचर होता है–

1. अनुलोम क्षय
2. प्रतिलोम क्षय

विषमाशन एवं वेगविधारण से होने वाला यक्ष्मा अनुलोम क्षय जन्य होता है। जबकि साहस तथा क्षय के कारण होने वाला यक्ष्मा प्रतिलोम क्षय होता है।

अनुलोम क्षय में उत्तरोत्तर धातुओं का क्षय होता है जबकि प्रतिलोम क्षय में पूर्व पूर्व धातुओं का क्षय होता है।

विषमाशन के कारण वातप्रकोप तथा स्त्रोतोरोध होकर रसरक्तादि धातुएँ ठीक से नहीं बन पाती तथा उत्तरोत्तर धातुओं का पोषण भी ठीक से नहीं हो पाता जिससे अनुलोमक्षय उत्पन्न होता है।

अधारणीय वेगों के धारण से स्त्रोतोरोध एवं आम की उत्पत्ति होकर उत्तरोत्तर धातुओं के पोषण न होने से क्षय होकर अनुलोमक्षय होता है। साहस या अपने सामर्थ्य से अधिक कार्य करने जैसे अपने से बलवान से युद्ध करना, अधिक भार उठाना आदि कारणों से फुफ्फुस में क्षत होकर उरःक्षत होकर यक्ष्मा उत्पन्न होता है। वायु प्रकुपित होकर कफ एवं पित्त को उदीर्ण कर यक्ष्मा के एकादश रूपों को उत्पन्न करता है।

क्षयोत्पादक हेतुओं जैसे अनशन, अतिव्यवाय, अतिरक्तस्त्राव तथा मानसिक कारणों जैसे क्रोध, शोक, भय आदि के कारण रोगी के ओज, वीर्य, धातु आदि का क्षय होकर वातप्रकोप होता है। प्रकुपित वायु पित्त एवं कफ को उदीर्ण कर यक्ष्मा उत्पन्न करता है।

राजयक्ष्मा के पूर्वरूप

1. श्वास 2. अंगमर्द 3. कफ का स्त्राव 4. तालु शोष 5. वमन 6. अग्निनाश 7. मद 8. पीनस 9. कास 10. निद्रा 11. नेत्रों में श्वेतता 12. मांस खाने की इच्छा 13. स्त्री रमण की इच्छा (रिरंसु)

(सु.उ. 41)

रोगी स्वप्न में देखता है कि वह कौए, तोते, सेह, मोर, गिद्ध, बंदर, गिरगिट की सवारी कर रहा है या नदियों को सूखा-जलरहित एवं पेड़ों को सूखा तथा वायु, धूम एवं दावाग्नि देखता है। राज्यक्ष्मा के पूर्वरूपों में स्वप्न विषयक विशिष्ट लक्षणों का उल्लेख मिलता है।

आचार्य चरक ने कुछ विशेष लक्षण बताए हैं–

पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोषदर्शनम्।
अदोषेश्वापि भावेषु काये बीभत्सदर्शनम्॥

(च.)

धृणित्वमश्नलश्चापि बलमांसपरिक्षयः। स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगुण्ठने मक्षिकाघुणकेशानां तृणानां पतनानि च। प्रायोऽन्नपाने केशानां नरवानां चाभिवर्धनम्। पतत्रिभिः पतङ्गैच्च श्वापदैश्चापि घर्षणम्। स्वप्ने केशास्थिराशीनां भस्मनश्चाधि रोहणम्॥

1. प्रतिश्याय 2. दौर्बल्य 3. दोष रहित चीजों में भी दोष दिखना 4. बीभत्सदर्शन (स्वच्छ शरीर भी गंदा लगना) 5. हर वस्तुओं के प्रति घृणा होना 6. उचित आहार लेने पर भी बल एवं मांस का क्षय 7. स्त्री-मद्य एवं मांस के प्रति आसक्ति 8. शरीर को ढके रहने की प्रवृत्ति 9.अन्न-पान में मक्खि, घुन, केश, तिनका आदि का गिरना या दिखना 10. केश एवं नख का अधिक बढ़ना 11. स्वप्न में पक्षि, पतंगे, श्वापद आदि द्वारा पराजित होना 12. स्वप्न में केश, अस्थि, राख के ढेर पर चढ़ना 13. जलाशयों का सूखना, पर्वतों का गिरना, वनों का सूखना 14. तारासमूह या अन्य प्रकाशयुक्त सूर्य, चंद्रमा आदि को गिरते हुए देखना।

राजयक्ष्मा के सामान्य लक्षण

असंपारश्र्वाभितापश्च सन्तापः करपादयो।
ज्वरः सर्वाङ्गश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः॥

(च.चि. 8)

1. अंस एवं पार्श्व में वेदना, 2. हस्त एवं पाद में संताप एवं 3. सर्वांग में ज्वर की उत्पत्ति ये राजयक्ष्मा के सामान्य लक्षण है।

यही त्रिरूप राजयक्ष्मा का लक्षण है।

राजयक्ष्मा के भेद

राजयक्ष्मा वैसे तो एक ही है, किंतु विभिन्न आधारों पर इसके भेद किए जा सकते हैं, जैसे–

1. हेतु के आधार पर चार प्रकार का यक्ष्मा–

i- साहसज ii. वेगविधारणज iii. क्षयज iv. विषमाशनज

2. संप्राप्ति के आधार पर 2 प्रकार का–

i. अनुलोमक्षय जन्य ii. प्रतिलोमक्षयजन्य

3. लक्षणों के आधार पर 3 भेद–

i. त्रिरुप राजयक्ष्मा ii. षड्रूप राजयक्ष्मा iii. एकादशरूप राजयक्ष्मा

त्रिरुप राजयक्ष्मा–उपरोक्त सामान्य लक्षण ही त्रिरुप राजयक्ष्मा के लक्षण है–

1. अंसपार्श्वाभिताप 2. कर एवं पाद में संताप एवं 3. सर्वांग में ज्वर।

षड्रूप राजयक्ष्मा

भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम्।
स्वरभेदश्च जायेत षड्रूपं राजयक्ष्मणि॥

(सु.)

1. खाने की इच्छा न होना
2. ज्वर
3. श्वास
4. कास
5. रक्तष्ठीवन
6. स्वरभेद

आचार्य चरक ने षड्रूप राजयक्ष्मा के लक्षण बताए है–

कासो ज्वरः पार्श्वशूलं स्वरवर्चोग्रहोऽरुचिः।

1. कास 2. ज्वर 3. पार्श्वशूल 4. स्वरभेद 5. अतिसार एवं 6. अरुचि।

एकादशरूप राजयक्ष्मा

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः॥
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च।
कासः कण्ठस्य चोद्ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः॥

(सु. 3.41)

1. स्वरभेद
2. अंस एवं पार्श्व में शूल एवं
3. संकोच

— वात के कारण

4. ज्वर
5. दाह
6. अतिसार
7. रक्तष्ठीवन

— पित्त के कारण

8. सिर में भारीपन
9. भोजन कें अरुचि
10. कास
11. कंठोध्वंस (उत्कासिका/धसका)

— कफ के कारण

चूंकि राजयक्ष्मा त्रिदोषज है, इन ग्यारह लक्षणों को दोष प्राबल्य के अनुसार विभक्त किया गया है।

राज्यक्ष्मा की साध्यासाध्यता

साध्यता

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम्।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम्॥

(सु.उ. 41)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

निम्न लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मा साध्य होता है–

1. ज्वर के अनुबंध से रहित
2. बलवान
3. क्रियाओं को सहने वाला
4. आत्मसंयमी
5. दीप्ताग्नि
6. अकृश

रोगी साध्य होता है।

असाध्यता

1. एकादशरूप, षड्रूप एवं त्रिरूप राजयक्ष्मा पीड़ित रोगी का बल, मांस यदि क्षीण हो गया हो।
2. पर्याप्त भोजन करने पर भी क्षीण होने वाला
3. अतिसार से ग्रस्त।
4. जिसके उदर एवं अंडकोषों पर शोथ हो गया हो।
5. जिसके नेत्र शुक्लवर्ण के हो गए हो।
6. जो अन्न से घृणा करे।
7. उर्ध्व श्वास से पीड़ित।
8. कृच्छ्रता के साथ बहुतमूत्र का त्याग करता हो।

ऐसे रोगी असाध्य होते हैं।

स्वरभेद

स्वरभेद में स्वर या शब्दोत्पत्ति की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होकर स्वर में विकृति उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् "वैकारिक स्वर" को स्वरभेद कह सकते हैं। यह कई व्याधियों में एक लक्षण या उपद्रवस्वरूप भी मिलता है। जैसे कास, राजयक्ष्मा, अर्दित, प्रतिश्याय, मेदज गलगंड आदि में स्वरभेद एक लक्षण रूप में मिलता है।

स्वरभेद के निदान-सम्प्राप्ति

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघात सन्दूषणैः प्रकुपिता पवनादयस्तु।
स्त्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः॥
(सु.उ. 53)

1. अत्यंत उच्च स्वर में बोलने। 2. विषसेवन।
3. उच्च स्वर में अध्ययन करने। 4. अभिघात

संप्राप्ति–उपरोक्त कारणों से वातादि दोष प्रकुपित होकर स्वरवाहि स्त्रोतों में आश्रित हो स्वर को नष्ट कर देते हैं। यह छः प्रकार का होता है।

भेद–यह छः प्रकार का होता है।

वातादिभिः पृथक् सर्वैमैदसा च क्षयेण च।

1. वातज 2. पित्तज
3. कफज 4. त्रिदोषज
5. क्षयज एवं 6. मेदज

आचार्य चरक ने पाँच प्रकार का माना है–

1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. सन्निपातज 5. रक्तज

आचार्य चरक ने कासज एवं पीनसज भेद भी माने है।

असाध्यता

1. क्षीण, वृद्ध एवं कृश व्यक्ति में होने वाला।
2. चिरकालीन।
3. जन्मजात।
4. मेदस्वी को होने वाला।
5. सन्निपातिक स्वरभेद

असाध्य होते हैं।

भेदानुसार लक्षण

वातज स्वरभेद	पित्तज स्वरभेद	कफज स्वरभेद	सन्निपातज स्वरभेद	क्षयज स्वरभेद	मेदोज स्वरभेद	रक्तज स्वरभेद
– मुख, नेत्र, मूत्र एवं मल की कृष्णवर्णता – आवाज धीरे-धीरे एवंगधे के समान कठोर (खर) होती है।	– मुख, नेत्र, मूत्र एवं मल की पीतवर्णता – बोलते समय गले में दाह	– कंठ के कफ से अवरुद्ध रहने से रोगी धीरे-धीरे बोलता है। – दिन में सरलता से बोल पाता है	– सभी दोषों के लक्षणों से युक्त – असाध्य	– मुख एवं नासिका से धूम निकलने की प्रतिती – बोलने में असमर्थ (हतवाक) – असाध्य	– मेद द्वारा स्त्रोतों रोध के कारण रोगी अंदर ही बोल पाता है – अस्पष्ट बोलता है। – तृष्णा से पीड़ित रहता है	– स्वर बैठा हुआ – आवाज का कम एवं कष्ट के साथ निकलना

VIII. अन्नवह-पुरिषवह स्त्रोतस के रोग

अग्निमांद्य

व्यक्ति की स्वस्थावस्था या रोगावस्था उसकी अग्निपर निर्भर रहती है। अग्नि के प्राकृत रहने पर स्वस्थता एवं विकृत होने पर रोग उत्पन्न होते हैं। अधिकांश व्याधियों की उत्पत्ति में अग्निमांद्य प्रमुख कारण माना गया है।

"रोगाः सर्वेपि मन्देग्नौ सुतरामुदराणि तु।"

अग्नियाँ तेरह प्रकार की बताई गई हैं–

कोष्ठाग्नि–1

भौतिकाग्नियाँ–5

धात्वाग्नियाँ–7

इन सभी अग्नियों में कोष्ठाग्नि प्रधान है। इसे ही जठराग्नि भी कहते हैं। यही अन्य अग्नियों को पोषित एवं नियंत्रित करती है। आहार का पाचन जाठराग्नि द्वारा होकर आहार रस की उत्पत्ति होती है, इसके पश्चात धात्वाग्नि की क्रिया होकर रस से लेकर उत्तरोत्तर शुक्र पर्यंत धातुओं का निर्माण धात्विाग्नि की क्रिया से होता है तथा उनमें से पाँचभौतिक अंशों का पाचन भौतिकाग्नि द्वारा होता है। अतः कोष्ठाग्नि के क्षय-वृद्धि का प्रभाव अन्य अग्नियों पर पड़ता है।

मिथ्या आहार-विहारादि से अग्नि में विकृति उत्पन्न होती है। दोषों की अवस्था का भी अग्नि पर असर पड़ता है एवं दोषानुसार अग्नि की पृथक्-पृथक् विकृति होती है। इस आधार पर अग्नि (कोष्ठाग्नि) 4 प्रकार की बताई गई है–

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।
कफपित्तनिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः॥

(मा. नि.)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

1. समाग्नि
2. विषमाग्नि
3. मंदाग्नि
4. तीक्ष्णाग्नि

समाग्नि–कोष्ठाग्नि की प्राकृत अवस्था हे, यह आरोग्यता दर्शाती है। जब सभी दोष अपने प्राकृत प्रमाण में रहते है तब समाग्नि होती है।

विषमाग्नि–वायु की प्रबलता से विषमाग्नि होती है।

मंदाग्नि–कफ की प्रबलता से मंदाग्नि होती है।

तीक्ष्णाग्नि–पित्त की प्रबलता से तीक्ष्णाग्नि होती है।

सभी दोषों का अग्नि पर प्रभाव मंदात्मक ही बताया गया है। अग्निमांद्य से आम की उत्पत्ति होती है तथा आम दोषों के साथ मिलकर सामदोष उत्पन्न कर विभिन्न रोग उत्पन्न करता है।

विषमाग्नि से वातज रोग, मंदाग्नि से कफज रोग एवं तीक्ष्णाग्नि से पित्तज रोग उत्पन्न होते हैं।

अतः अग्निमांद्य से दोषवृद्धि एवं दोषवृद्धि से अग्निमांद्य यह चक्र चलता रहता है।

लक्षण

समाग्नि–सम मात्रा में खाया हुआ भोजन ठीक से पच जाता है।

मंदाग्नि–अल्प मात्रा में खाया हुआ अन्न भी नहीं पचता।

विषमाग्नि–भोजन कभी ठीक से पच जाता है कभी नहीं पचता।

तीक्ष्णाग्नि–समप्रमाण या अतिप्रमाण में खाया हुआ अन्न सुखपूर्वक पच जाता है।

समाग्नि सभी अग्नियों में श्रेष्ठ मानी गई है।

अजीर्ण

अग्निमांद्य से ही अजीर्ण की उत्पत्ति होती है। अग्नि के मंद होने पर आहार का ठीक से पाचन नहीं हो पाता, इस भोजन की अपाकावस्था का ही दूसरा नाम अजीर्ण है। यह भी रोगकारक कहा गया है।

न जीर्यती सुखेनान्नं विकारान् कुरुतेऽपि च।
तदजीर्णमिति प्राहुस्तन्मूला विविधा रुजः॥

(गणनाथसेन)

अजीर्ण की दोषानुसार मुख्य तीन अवस्थाएँ होती है–
1. आमाजीर्ण 2. विदग्धाजीर्ण 3. विष्टब्धाजीर्ण

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः।
अजीर्णं केचिदिच्छिन्ति चतुर्थं रसशेषतः॥
अजीर्ण पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च।
वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम्॥

(सु.सू. 46)

इनके अलावा आचार्यों ने अन्य 3 अजीर्ण माने हैं–
1. रसशेषाजीर्ण 2. दिनपाकी 3. प्राकृत ऐसे कुल छः भेद हैं।

1. आमाजीर्ण–आमाजीर्ण की अवस्था कफ के कारण होती है। आहार पाचन की प्रथमावस्था आमाशय में होती है यहाँ मधुरावस्थापाक होता है, अग्निमांद्य होने पर कफ की अधिकता से आमाजीर्ण उत्पन्न होता है।

लक्षण

1. शरीर में गुरुता
2. उत्क्लेद (मिचली)
3. गंड एवं अक्षिकूटों में शोथ
4. भोजन के अनुसार अविदग्ध उद्गार (डकार) प्रवृत्ति

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गंडाक्षिकूटगः।
उद्गारश्च यथा भुक्तम विदग्धः प्रवर्तते॥

(मा.नि.)

2. विदग्धाजीर्ण–पित्त की अधिकता से विदग्धाजीर्ण की अवस्था उत्पन्न होती है। आहार पाचन की द्वितीय अवस्था पित्त के स्थान-ग्रहणी में होती है, यहाँ अम्लावस्थापाक होता है, और अग्नि यदि विकृत या मंद हो तो विदग्धाजीर्ण उत्पन्न होता है।

लक्षण

1. भ्रम
2. तृष्णा
3. मूर्च्छा
4. अन्य ओष-चोष आदि पैत्तिक कारण
5. अम्ल उद्गार प्रवृत्ति के साथ मुख से धूम निकलने की प्रतिती
6. स्वेद
7. दाह

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः।
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते॥

(मा.नि.)

3. विष्टब्धाजीर्ण–वातवृद्धि के कारण विष्टब्धाजीर्ण की अवस्था उत्पन्न होती है। आहार पाचन की तृतीय अवस्था वात के प्राकृत स्थान पक्वाशय में होती है, यहाँ कटुकावस्थापाक होता है। तथा अग्निमांद्य के कारण विष्टब्धाजीर्ण होता है।

लक्षण

1. शूल
2. आध्मान
3. तोद
4. भेद आदि वातिक वेदनाएँ
5. मल एवं अधोवायु की अप्रवृत्ति
6. स्तंभन
7. मोह
8. अंगों में पीड़ा

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः।
मलवाताप्रवृत्ति श्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम्॥
रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे।

(मा.नि.)

4. रसशेषाजीर्ण–आहार का पाचन हो जाने के उपरान्त कुछ अंश का अपाचित या शेष रह जाना रसशेषाजीर्ण कहलाता है।

लक्षण

1. भोजन के प्रति अरुचि
2. हृदय में अशुद्धि
3. गुरुता

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे।

5. दिनपाकी अजीर्ण–प्राकृत परिपाक काल के बीत जाने के बाद भोजन का परिपाक होना दिनपाकी अजीर्ण कहलाता है। अतिमात्रा में भोजन करने, अकाल में भोजन करने तथा असात्म्य भोजन करने से भोजन का पाचन निर्धारित काल में न होकर अगले दिन होता है इसे दिनपाकी अजीर्ण कहते हैं।

इसमें आध्मान आदि कोई भी उपद्रव उत्पन्न नहीं होते।

6. प्राकृत अजीर्ण–यह प्राकृत अवस्था है। भोजन करने के उपरांत उसके पाचन होने तक जो अन्न की अपरिपक्वावस्था स्वभावतः रहती है उसे प्राकृत अजीर्ण कहते हैं। यह हर व्यक्ति में प्रतिदिन रहती है। इससे कोई विकार उत्पन्न नहीं होता।

इनके अलावा
मधुरोद्गार एवं उत्क्लेश–आमाजीर्ण के
अम्लोद्गार एवं तृष्णा–विदग्धाजीर्ण के एवं
विबंध एवं आध्मान–विष्टब्धाजीर्ण के
प्रत्यात्म लक्षण है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

अरुचि (अरोचक)

अरुचि–अर्थात् भोजन के प्रति अनिच्छा।

माधवनिदान में अरोचक का पृथक अध्याय में विस्तृत वर्णन किया गया है।

भोजन के प्रति अरुचि अर्थ में ग्रंथों में विभिन्न-पर्याय प्राप्त होते है तथा सभी की विभिन्न परिभाषा प्राप्त होती है जैसे–

1. अरुचि–स्वादु भोजन भी मुख में डालने पर बेस्वाद या अरुचिकर लगना।
2. भक्तद्वेष–भोजन के प्रति द्वेष उत्पन्न होना। भोजन के दर्शन, स्पर्शन, गंध, स्मरण आदि से भी द्वेष होना। खाने की इच्छा न होना।
3. अनन्नाभिलाषा (अन्नाभिनन्दन)–इच्छित आहार देने पर भी न खा सकना या खाने की इच्छा न होना।
4. अभक्तच्छन्द–भोजन में श्रद्धा न होना। क्रोध, शोक, भय आदि मानसिक कारणों से भोजन की इच्छा का अभाव होना।

अरुचि यह प्रकुपित कफ का विशिष्ट लक्षण है।

अरोचक के निदान

वातादिभिः शोकभयाति लोभ क्रोधैर्मनोघ्नाशन रूप गन्धैः।
अरोचकाः स्यु॥

वातादि दोषों के कारण, शोक-भय-लोभ-क्रोध एवं मन को अप्रिय भोजन, रूप, गंध आदि से पाँच प्रकार का अरोचक उत्पन्न होता है। इसमें अधिकांश निदान मानसिक है। अतः अरोचक मुख्यतः मानसिक कारणजन्य है।

अरोचक के भेद

अरोचक पाँच प्रकार का बताया गया है–

1. वातज
2. पित्तज
3. कफज

4. सन्निपातज
5. आगन्तुज

अजीर्ण के निदान

1. अधिक जल पीने से
2. विषमाशन
3. वेगविधारण
4. स्वप्नविपर्यय (दिन में सोने एवं रात्रि जागरण से)
5. ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ आदि मानसिक कारणों से
6. रोगी
7. दीन
8. मनोग्लानियुक्त
9. द्वेषयुक्त (अन्न के प्रति)

उपरोक्त कारणों से सात्म्य, लघु एवं मात्रापूर्वक खाया हुआ भोजन भी नहीं पचता।

इसके अलावा आचार्यों ने कहा है कि–

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि॥

जो संयमरहित मनुष्य पशु की तरह प्रमाण से अधिक खाते हैं वे रोगसमूह के मूल कारण अजीर्ण को प्राप्त होते हैं।

अजीर्ण के उपद्रव

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदंन भ्रमः।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः॥

(सु.सू. 46)

1. मूर्च्छा 2. प्रलाप 3. वमन 4. प्रसेक 5. अंगसाद 6. भ्रम एवं 7. मृत्यु ये अजीर्ण के उपद्रव है।

भेदानुसार अरोचक के लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	सन्निपातज	आगन्तुज
1. दाँतों में हर्ष होना या पानी लगना 2. मुख का स्वाद कषाय रसात्मक होना।	मुख का स्वाद 1. कटुरसात्मक होना 2. अम्ल होना 3. उष्ण होना 4. विरस होना 5. दुर्गंधित होना	मुख में 1.मधुरता 2.लवणरसता लक्षण 3.पिच्छिलता 4.गुरुता 5.शीतता 6.जकड़ाहट	तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण	मुख का स्वाद प्राकृत होते हुए भी भोजन के प्रति अरुचि रहती है। कारण–शोक, भय, लोभ, क्रोध तथा मनोविपरित अन्न अपवित्रता, दुर्गंध आदि के आगन्तुज अरुचि उत्पन्न होती है।

विशिष्ट दोषानुसार लक्षण

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन, पित्तात्तृड्दाहचोषबहुलं, सकफप्रसेकम्।
श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोह जड़ताभिरथापरं च॥

(च.चि.अ. 26)

वातिक अरोचक–हृदशूल, पीड़ा
पैत्तिक अरोचक–तृष्णा, दाह, चोष
कफज अरोचक–प्रसेक (लालास्त्राव)
त्रिदोषज–अनेक प्रकार की पीड़ा
आगन्तुज–मन की व्याकुलता, जड़ता (मूर्च्छा), हठ आदि।

छर्दि

छर्दि अर्थात् वमन या उल्टी होना।

इसमें मुख से कफ और पित्त मिश्रित अन्न बाहर निकलता है।

छर्दि की निरुक्ति

–द्रुतमुत्क्लेशितो बलात्।
छादयन्नानं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः।
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः॥

(सु.उ. 49)

अचानक शीघ्र उत्क्लेशित हो बलपूर्वक मुख को आच्छादित कर अंग प्रत्यंगों को पीड़ित करता हुआ मुख से निकलने वाला प्रकृपित दोष छर्दि कहलाता है।

छर्दि के निदान

अतिद्रवैरतिस्निग्धैर हृद्यैर्लवणैरति।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः
श्रमाद्भयात्तयोद्वेगादजीर्णात् क्रिमिदोषतः।
नार्याश्चापन्नसत्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः।
बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैः...

1. अतिद्रव
2. अतिस्निग्ध
3. मन को प्रिय न लगने वाला (अहृद्य)
4. लवण रस का अतिसेवन
5. अकाल में, अतिमात्रा में, असात्म्य भोजन करने
6. श्रम, भय, उद्वेग से
7. अजीर्ण
8. उदर में क्रिमि उत्पन्न होने से
9. गर्भवती स्त्री (आपन्नसत्वा)
10. जल्दी-जल्दी भोजन करने
11. बीभत्स चीजों के दर्शन

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

इन कारणों से छर्दि होती है।

छर्दि के पूर्वरूप–

हल्लासोद्गारराधौ च प्रसेको लवणस्तनुः।
द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम्॥

(सु. उ. 49)

1. हल्लास (मिचली)
2. उद्गार प्रवृत्ति न होना
3. मुख से लवण रसात्मक एवं पतला लालास्त्राव होना
4. अन्नपान के प्रति द्वेष होना

ये छर्दि के पूर्वरूप है।

छर्दि के भेद

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सवैर्बीभत्सालोचनादिभिः।
छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते॥

छर्दि के पाँच भेद हैं–

1. वातिक
2. पैत्तिक
3. कफज
4. सन्निपातज
5. बीभत्स या गंदी चीजों को देखने आदि आगन्तुज कारणों से होने वाली छर्दि।

छर्दि के असाध्य लक्षण

1. अत्यंत प्रकुपित दोष वाले व्यक्ति में वायु विलोम होकर मल, मूत्र, स्वेद एवं जलवाही स्त्रोतों में अवरोध उत्पन्न करके दोषों को कोष्ठ से निकलकर उपर की ओर लाता है तब मल एवं मूत्र के समान गंध एवं वर्ण वाला वमन करता है–ये असाध्य है।
2. जो रोगी तृष्णा, श्वास एवं हिक्का से पीड़ित रहता है एवं वेग युक्त वमन से ग्रस्त रहता है ऐसा रोगी शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है।
3. क्षीण रोगी में निरंतर होने वाली रक्त, पूय एवं चंद्रिकायुक्त एवं उपद्रवयुक्त छर्दि असाध्य होती है।

छर्दि के उपद्रव

कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्त्यमेव च।
हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्दिरुपद्रवाः॥

(च.चि. 23)

1. कास 2. श्वास 3. ज्वर 4. हिक्का 5. तृष्णा 6. चित्तविभ्रम 7. हृदरोग 8. तमकश्वास ये छर्दि के उपद्रव है।

भेदानुसार लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	सन्निपातज	आगन्तुज छर्दि
1. हृद प्रदेश एवं पार्श्व में पीड़ा 2. मुखशोष 3. सिर एवं नाभि में पीड़ा 4. कास, स्वरभेद 5. तोद 6. वमन का वेग प्रबल शब्द वाले उद्गार के साथ फेनयुक्त, विच्छिन्न कृष्ण, तनु, कषायासात्मक बड़ी कठिनता के साथ, अल्प मात्रा में एवं अत्यंत वेग के साथ 7. रोगी को अत्यंत दुःखदायक होता है।	1. मूर्च्छा 2. तृष्णाधिक्य 3. मुखशोष 4. सिर, तालु एवं नेत्रों में दाह 5. मोह, भ्रम 6. वमन का वेग पीत वर्ण, उष्ण, हरितवर्ण, धूम्रवर्ण एवं तिक्तरसात्मक तथा दाहयुक्त होता है।	1. तन्द्रा 2. मुख माधुर्य 3. मुख से कफस्त्राव प्रसेक 4. संतोष (खाने की इच्छा न होना) 5. अतिनिद्रा 6. अरुचि, गौरव 7. वमन का वेग स्निग्ध, घन, मधुर रसात्मक, श्वेतवर्ण, रोमहर्ष एवं अल्पवेदना युक्त होता है	1. उदरशूल 2. अविपाक, अरुचि 3. दाह, तृष्णा 4. श्वास 5. मोह युक्त 6. वमन का वेग प्रबल रक्तयुक्त, लवण या अम्ल रसात्मक, नीलवर्ण घना, उष्ण, रक्त युक्त होता है।	1. वीभत्स या गंदी वस्तुओं के दर्शन से, गर्भिणी स्त्री में, आमदोष या आमाजीर्ण के कारण, असात्म्य भोजन के सेवन एवं कृमिरोग के कारण आगन्तुक छर्दि उत्पन्न होती है **कृमिज छर्दि के लक्षण–** 1. उदरशूल 2. हल्लास एवं 3. कृमिज हृद रोग के अन्य लक्षण

अम्लपित्त

प्राकृत पित्त का रस कटु होता है किंतु जब पित्त विकृत या विदग्ध हो जाता है तब उसका रस अम्ल हो जाता है इस अवस्था को अम्लपित्त कहते है।

'अम्ल विदग्धं च तत् पित्तम् अम्लपित्तम्।'

आचार्य चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि ने अम्लपित्त का पृथक वर्णन नहीं किया। आचार्य काश्यप ने सर्वप्रथम अम्लपित्त व्याधि का पृथक् वर्णन किया तथा माधवनिदान में भी अम्लपित्त का पृथक् वर्णन किया तथा माधव निदान में भी अम्लपित्त का पृथक् स्वतंत्र वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य काश्यप ने इसे आनूप देश की व्याधिं बताई है। यह व्याधि विशेषकर आनूप देश, वय की मध्यमावस्था एवं शरद ऋतु में होती है।

अम्लपित्त की निदान-सम्प्राप्ति

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम्।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः॥

निदान

1. विरुद्ध भोजन
2. दूषित भोजन
3. अम्ल भोजन
4. विदाही भोजन
5. पित्त प्रकोपक अन्नपान

संप्राप्ति

इन सब कारणों के सेवन से पहले से ही वर्षाऋतु आदि कारणों से संचित पित्त और अधिक विदग्ध हो जाता है। इसे अम्लपित्त कहते हैं।

अम्लपित्त के अन्य निदान

अतिअम्ल, अतिउष्ण पदार्थों का सेवन, अतिमद्यपान, अभिष्यंदि एवं पिष्ट पदार्थों का अतिसेवन, अध्यशन, विरुद्धाशन, अजीर्णाशन, कुलत्थ का अतिसेवन, अनूपदेश, वेगविधारण, विषसेवन आदि पित्तप्रकोपक कारण।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

अम्लपित्त के सामान्य लक्षण

अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गार गौरवैः।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक्॥

(मा.नि.)

1. भोजन का अपाक
2. क्लम (बिना परिश्रम के थकावट)
3. उत्क्लेश (मिचली)
4. तिक्त एवं अम्ल उद्गार (डकारें)
5. गुरुता
6. हृदय एवं कंठ में दाह
7. अरुचि

ये अम्लपित्त के सामान्य लक्षण है।

अम्लपित्त के भेद

मार्गानुसार दो भेद–

1. ऊर्ध्वग अम्लपित्त
2. अधोग अम्लपित्त

दोषानुसार तीन भेद–

1. वातानुबंधी
2. कफानुबंधी
3. वातकफानुबंधी

उर्ध्वग अम्लपित्त के लक्षण	अधोगअम्लपित्त के लक्षण
कफ का अनुबंध	पित्त का अनुबंध
वमन–	1. तृष्णा
1. हरा, पीला, नीला, काला, अल्परक्त या रक्त वर्ण का।	2. दाह
2. अम्ल रसात्मक	3. मूर्च्छा
3. मांस धोवन के सदृश	4. भ्रम, मोह
4. अत्यंत पिच्छिल	5. हरीत, पीत, कृष्ण या रक्तवर्ण का अम्लपित्त कभी कभी गुदमार्ग से निकलता है।
5. स्वच्छ कफयुक्त	6. मिचली
6. विविध रसात्मक	7. शरीर पर कोठ (ददोड़े) उत्पन्न होना
7. खाए हुए अन्न का पाक हुए	8. अग्निनाश

या न हुए भी तिक्त एवं अम्ल रसात्मक वमन 8. इन्ही रसों की उद्गार (डकारे) प्रवृती 9. कण्ठ, हृदप्रदेश एवं उदर में दाह 10. शिरोवेदना 11. हस्तपाद में दाह, उष्णता 12. अत्यंत अरुचि 13. ज्वर, संपूर्ण शरीर में कंडु, मंडल, पिडिकाएँ, उत्क्लेश	9. रोमहर्ष 10. स्वेद की अतिप्रवृत्ति 11. अंगों का पीलापन

दोषानुसार अम्लपित्त के लक्षण

वाताधिक अम्लपित्त	कफाधिक अम्लपित्त	वातकफाधिक अम्लपित्त
1. कंपन	1. मुख से कफष्ठीवन	1. दोनों दोषों के मिले हुए लक्षण
2. प्रलाप	2. शरीर में गुरुता	
3. मूर्च्छा	3. जड़ता	
4. शरीर में चुनचुनाहट	4. अरुचि	
5. अंगों में शिथिलता	5. शीतता, शिथिलता	
6. शूल	6. वमन	
7. आँखों के आगे अंधेरा छाना (तम)	7. मुख का कफ से लिप्त रहना	
8. विभ्रम	8. अग्निमांद्य	
9. विपरित ज्ञान होना(विमोह)	9. कंडू	
10. अकारण हर्ष (रोमहर्ष)	10. निद्रा	

अम्लपित्त की साध्यासाध्यता

नया अम्लपित्त साध्य

पुराना अम्लपित्त याप्य या कृच्छ्रसाध्य।

शूल-परिणामशूल-अन्नद्रवशूल

शूल एक प्रकार की विशिष्ट पीड़ा है जो काँटे या शंकु के चुभने या घुसने से होती है।

हारित संहिता में शूल की उत्पत्ति से संबंधित एक पौराणिक कथा का वर्णन है जिसके अनुसार त्रिशूल से शूल की उत्पत्ति हुई। जब कामदेव ने शंकर जी की तपस्या भंग की थी तब शंकरजी ने कामदेव पर क्रोधित होकर त्रिशूल फेंका था तब डर के मारे कामदेव जी ने विष्णु जी के शरीर में छुप कर शरण ली तब विष्णुजी ने हुंकार भरी जिससे त्रिशूल अपवारित होकर पृथ्वी पर आ गिरा एवं उससे शूल रोग की उत्पत्ति हुई।

आचार्य सुश्रुत ने इसका निम्न प्रकार से परिभाषा की है–

"शङ्कुस्फोटनवत् तस्य यस्मात् तीव्राश्च वेदनाः।
शूलासक्तस्य लक्ष्यन्ते तस्माच्छूलमिहोच्यते॥"

शूल से सामान्यतः तीव्र वेदना का बोध होता है। यह प्रायः वायु के कारण होती है एवं शरीर के किसी भी स्थान में हो सकती है–कर्णशूल, दंतशूल, कटिशूल आदि। किंतु यहाँ शूल शब्द से उदरगत शूल का ही वर्णन प्राप्त होता है। केवल मात्र शूल शब्द का प्रयोग "उदरशूल" को दर्शाता है। आचार्य सुश्रुत ने इसे गुल्म का उपद्रव बताया है तथा गुल्म की भाँति ही इसके पाँच स्थान बताएँ है–स्वतंत्र रूप से शूल रोग की उत्पत्ति बताई है।

शूल के सामान्य निदान सुश्रुतानुसार

1. वायु, मल एवं मूत्र के वेग को रोकने से।
2. अति मात्रा में भोजन करने से।
3. अजीर्ण से।
4. अध्यशन से।
5. अधिक परिश्रम करने से।
6. विरुद्ध भोजन से।
7. पिष्टान्न सेवन।
8. शुष्क मांस के सेवन

इन कारणों द्वारा वात प्रकोप होकर शूल उत्पन्न होता है।

शूल के भेद

दोषैः पृथक् समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत्।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः॥

शूल आठ प्रकार का होता है–

1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. वातपित्तज 5. वातकफज 6. पित्तकफज 7. त्रिदोषज 8. आमज।

सभी शूलों में वायु की प्रधानता रहती है।

भेदानुसार शूलों के निदान एवं लक्षण

शूलभेद	निदान	लक्षण
1. वातज शूल	अतिव्यायाम, अतिमैथुन, अतिसवारी, रात्रिजागरण, अतिशीतल जल का पान, मूंग, मटर, अरहर आदि अतिरुक्ष पदार्थों का सेवन, अनशन, अभिघात, कषाय-तिक्तरसका अतिसेवन, अंकुरित अन्न का सेवन, विरुद्धान्न का सेवन, शुष्क मांस एवं शुष्क शाक का सेवन, मल, मूत्र, वायु, शुक्र के वेग का विधारण, शोक, उपवास, अति हंसना, बोलना आदि से वात का प्रकोप।	1. हृदय, दोनों पार्श्व, पृष्ठ त्रिक एवं बस्ति में शूल 2. भोजन पच जाने पर, सायंकाल के समय वर्षा ऋतु एवं शीत के समय शूल विशेष रूप से बढ़ जाता है।
2. पित्तज शूल	क्षार, अतितीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, तेल, सेम, सरसों, कुलत्थ आदि के यूष के सेवन, कटु, अम्ल, सौवीर, सुरा आदि का सेवन, क्रोध करने, अग्नि सेकने अतिपरिश्रम करने, धूप के अतिसेवन, अतिमैथुन, भोजन के विदग्ध होने से पित्त का प्रकोप।	1. नाभि प्रदेश में शूल 2. तृष्णा 3. दाह 4. मोह 5. पीड़ा 6. स्वेदाधिक्य 7. मूर्च्छा 8. भ्रम 9. मध्यांह्न, अर्धरात्रि, भोजन पचते समय एवं शरद ऋतु में शूल की वृद्धि। 10. शीत ऋतु, शीतल पदार्थों के सेवन मधुर एवं शीतल आहार से वेदना का शमन

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

		होता है।
3. कफज शूल	आनूप एवं जलचर प्राणियों के मांस सेवन से, खोवा, छेना या दूध के बने पदार्थों के सेवन से, मांस के अति सेवन, गन्ने के सेवन पिष्टमय पदार्थों, कृशरा, तिल, कचौड़ी आदि के सेवन से कफ प्रकोप होता है।	1. आमाशय में शूल 2. हल्लास 3. कास 4. अंगसाद 5. अरुचि 6. कफप्रसेक 7. कोष्ठबद्धता 8. सिर में गुरुता 9. भोजन करने के तुरन्त बाद प्रात:काल, शिशिर एवं वसंत ऋतु में शूल की वृद्धि विशेषकर होती है।
4. वात कफज शूल		हृदय, पार्श्व एवं पृष्ठ में शूल
5. कफ पित्तज शूल		कुक्षि तथा हृदय एवं नाभि के बीच का शूल
6. वात पित्तज शूल		बस्ति तथा नाभि में दाह एवं ज्वर से युक्त भयंकर शूल
7. सन्निपातज शूल		तीनों दोषों के सब लक्षण अत्यंत कष्टप्रद विष एवं वज्र के समान असाध्य
8. आमज शूल		1. कफज शूल के समान लक्षण 2. आटोप 3. हल्लास 4. शरीर में गुरुता 5. शरीर गीले चमड़े से आवृत्त होने के समान प्रतीति 6. आनाह 7. मुख से कफ स्त्राव

शूल की साध्यासाध्यता

एक दोषज–साध्य

द्विदोषज–याप्य

त्रिदोष एवं उपद्रव युक्त–असाध्य

परिणामशूल

जो भोजन के परिणाम काल अर्थात् पाचन काल में शूल उत्पन्न होता है उसे परिणाम शूल कहते हैं।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः संनिहितस्तदा।
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्वली।
भुक्ते जीर्यतियच्छूलं तदेव परिणामजम्॥
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते।

(मा.नि.)

अपने कारणों से प्रकुपित वायु कफ और पित्त को आवृत्त करके भोजन के परिणाम काल में बलवान होकर शूल उत्पन्न करता है। भोजन के जीर्ण होने पर यह शूल होता है अतः इसे परिणामशूल कहते हैं।

परिणामशूल के भेद–परिणामशूल वैसे तो सन्निपातज होता है परंतु दोषों के प्राबल्य के अनुसार सप्तविध भेद किए गए है।

भेदानुसार लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	द्वन्द्वज	सन्निपातज
1. आध्मान 2. आटोप 3. मलमूत्र का अवरोध 4. अरति 5. कंपन 6. स्निग्ध एवं उष्ण पदार्थों से शूल की शांति	1. तृष्णा 2. दाह 3. अरति 4. स्वेदाधिक्य 5. कटु, अम्ल, लवण रस वाले पदार्थों से शूल की वृद्धि 6. शीतोपचार से शूल की शांति	1. वमन 2. हल्लास 3. मूर्च्छा 4. दीर्घकाल तक थोड़ी-थोड़ी पीड़ा बनी रहना। 5. कटु तिक्त पदार्थों से शूल की शांति	दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण	तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण असाध्य होता है।

अन्नद्रव शूल

अन्नद्रवशूल में निरंतर शूल बना रहता है, रोगी को आराम नहीं मिलता। वमन द्वारा दूषित पित्त निकल जाने पर शूल की शांति होती है।

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते।
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च।
न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः॥

भोजन के जीर्ण हो जाने पर या अजीर्ण (पचने से पूर्व) की अवस्था में जो शूल होता है (अर्थात् किसी भी समय) तथा पथ्यापथ्य के प्रयोग या भोजन के करने या न करने से भी जो शूल नियमानुसार शांत नहीं होता उसे अन्नद्रवशूल कहते हैं।

अतिसार

अति–बहुतमात्रा + सृ – सरण, प्रवृत्ति
अर्थात् अति या बहुत मात्रा में प्रवृत्ति होना।

परिभाषा–

–अतिसरणम् अतिसारः। (डल्हण)

–अतीव सरत्यतिसारे गूदेन। (शारंगधर)

–गुदेन बहुद्रव सरणं अतिसारः। (मधुकोष)

–असंहत मलः गुदेन मुहुर्मुहः सरति इति अतिसारः (भावप्रकाश)

अर्थात् संक्षेप में गुदमार्ग द्वारा द्रवमल की बार-बार प्रवृत्ति अतिसार कहलाती है। अतिसार की उत्पत्ति के विषय में यह पौराणिक मान्यता है कि गाय के माँस से अतिसार रोग उत्पन्न हुआ।

अतिसार के निदान

1. अत्यंत गुरु, स्निग्ध, रुक्ष, उष्ण, द्रव, स्थूल, शीतल पदार्थों का सेवन।
2. विरुद्धाशन, अध्यशन, अजीर्णाशन, विषम भोजन करने से।
3. स्नेहन, स्वेनादि (पंचकर्मो) के अति या मिथ्या प्रयोग से।
4. विषसेवन से।
5. भय, शोकादि मानसिक कारणों से।
6. दूषित जल, अतिमद्यपान से।
7. सात्म्य एवं ऋतुविपर्यय से।
8. अत्यधिक जलक्रीडा से।
9. वेगविधारण से।
10. क्रिमिदोष के कारण।

अतिसार उत्पन्न होता है।

अतिसार की संप्राप्ति

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः शकृन्मिश्रा वायुनाऽधः प्रणुन्नः।
सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधि घोरं षड्विधं ते वदन्ति॥
एकैशः सर्वश श्चापि दोषैः शौकनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः॥

(सु.उ.य. 47)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

दूषित आप धातु (जलीय धातु) एवं प्रवृद्ध दोष अग्नि को मंद करके मल के साथ मिलकर वायु द्वारा प्रेरित होकर गुद मार्ग से प्रभुत मात्रा में बाहर निकलते है। इस घोर व्याधि को अतिसार कहते हैं। एकदोषज, सन्निपातज एवं शोकज एवं आमज भेद से यह छः प्रकार का होता है।

अतिसार के पूर्वरूप

हन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिजसन्निरोधाः।
विटसङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि॥

(सु.उ.अ. 40)

1. हृद प्रदेश, नाभि, गुद, उदर, कुक्षि में तोद।
2. गात्रावसाद।
3. अधोवायु का अवरोध।
4. मलबंध।
5. आध्मान
6. अविपाक

ये अतिसार के पूर्वरूप है।

अतिसार के भेद

अतिसार के छः भेद किए गए हैं–

1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. सन्निपातिक 5. आमज 6. शोकज

साम-निराम मल लक्षण

साम मल–वातादि दोषों के लक्षणों से युक्त, अत्यंत दुर्गंधित एवं पिच्छिल तथा जल में डालने पर डूबने वाला मल साम कहलाता है।

निराम मल–दुर्गंध एवं पिच्छिलता से रहित, जल पर तैरने वाला, शरीर एवं कोष्ठ में लघुता से युक्त मल निराम कहलाता है।

रक्तातिसार

पैत्तिक अतिसार से ग्रस्त रोगी जब पित्तवर्धक पदार्थों का अत्यधिक एवं निरंतर सेवन करता है तब रक्तातिसार की उत्पत्ति होती है। क्योंकि यह पित्तातिसार की ही प्रवृद्ध अवस्था है अतः इसे पृथक् भेद नहीं माना गया।

भेदानुसार अतिसार के लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	सन्निपातज	शोकज	आमज
अरुण वर्ण का झागदार, रुक्ष, एवं आम मल अल्प-अल्प मात्रा में बार-बार वेदना एवं शब्द के साथ निकलता है।	1. पीत, नील या रक्तवर्ण का मल त्याग करता है। 2. तृष्णा एवं मूर्च्छा से पीड़ित 3. सर्वांग में दाह एवं गुदपाक	1. रोमहर्ष 2. श्वेत, घन, कफयुक्त, दुर्गंधित एवं शीतल मल का प्ररित्याग	वराह (सुअर) के वसा, मांस के धोवन के सदृश मल-प्रवृत्ति एवं सभी दोषों के लक्षणों से युक्त मलप्रवृत्ति कृच्छ्रसाध्य	1. क्षोभ युक्त तथा गुंजाफल के समान वर्ण वाला रक्त-मलरहित या मलयुक्त निर्गंध या सगंध-गुदामार्ग से निकलता है।	अनेक वर्णों से युक्त मल का पीड़ा के साथ त्याग।

अतिसार के असाध्य लक्षण

1. मल का वर्ण–पक्व जामुन के सदृश, स्निग्ध, कृष्ण वर्ण वाला हो या।
2. यकृत खंड के समान कृष्णलोहित।
3. पतला, घी, तैल, वसा, मज्जा, वेशवार, दूध, दही एवं मांस धोवन के समान वर्णवाला।
4. अंजन के समान कृष्ण।
5. चाष पक्षी के पंखों के समान नील, अरुण वर्ण वाला।
6. मर्दित अंजन के पिंड के समान कृष्णरुक्ष।
7. स्निग्ध एवं विभिन्न वर्णों वाला।
8. मयूर पिच्छा के समान चंद्रिका युक्त।
9. घन।
10. शवगंधी।
11. सुगंधित, सड़ा हुआ मात्रा में अधिक।
12. रोगी तृष्णा, दाह, तम, श्वास, हिक्का, पार्श्वशूल, अस्थिशूल, मूर्च्छा, अरति, मोह से पीड़ित हो।
13. गुदवलीयों में पाक हो।
14. प्रलाप करता हो।
15. जिसकी गुदवलियाँ संकुचित न हो, जो क्षीण हो आध्मानयुक्त एवं उपद्रव युक्त हो।
16. गुदपाक होने पर भी शरीर में गर्मी न रह गई हो।

ये सब असाध्य बताए गए है, ये अचिकित्स्य कहे गए हैं।

ज्वरातिसार

ज्वर एवं अतिसार के पृथक्–पृथक् निदान मिलकर ज्वारातिसार उत्पन्न करते हैं।

गतातिसार का लक्षण

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति।
दीप्ताग्नेर्सलघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदशमयः॥

(सु.उ.अ. 40)

जिस रोगी के मूत्र एवं अधोवायु की प्रवृत्ति बिना मल प्रवृत्ति के सम्यक् प्रकार से हो, अग्नि प्रदीप्त से, कोष्ठ लघु हो उसे अतिसार से मुक्त समझना चाहिए।

प्रवाहिका

जिस रोग में मल की प्रवृत्ति प्रवाहण या कुंथन के साथ होती है, उसे प्रवाहिका कहते हैं।

आचार्य चरक एवं वाग्भट ने इसका पृथक् वर्णन नहीं किया। आचार्य सुश्रुत एवं माधव ने प्रवाहिका का पृथक् एवं विस्तृत वर्णन किया है। आचार्य चरक ने आमातिसार या कफातिसार में ही इसका समावेश कर लिया है।

प्रवाहिका की निदान-सम्प्राप्ति

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य।
प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्त प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

(सु.उ.अ. 40)

अहित आहार करने वाले व्यक्ति के कोष्ठ में संचित कफ को प्रकुपित वायु जब बाहर निकलने के लिए प्रेरित करता है तब व्यक्ति प्रवाहण करने पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बहुत बार मलयुक्त कफ को बाहर निकालता है (गुद मार्ग से) इसे प्रवाहिका कहते हैं।

लक्षण

प्रवाहतो अल्पं बहुशोमलाक्तं–अर्थात् बहुत प्रवाहण (जोर लगाने) करने पर अल्प मल का बार-बार निकलना इसका लक्षण है।

वातातिसार में आम और कफ का अनुबंध होने या कफातिसार में वात का अनुबंध होने पर प्रवाहिका होती है।

प्रवाहिका के भेद

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात् सदाहा सकफा कफाच्च।
सशोणिता शोणितसम्भवा च ताः स्नेहरुक्षप्रभवा मतास्तु॥
तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रम चामविपक्वतां च।

प्रवाहिका के 4 भेद हैं–1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. रक्तज

वातज प्रवाहिका–शूलयुक्त

पित्तज प्रवाहिका–दाहयुक्त

कफज प्रवाहिका–कफयुक्त

रक्तज प्रवाहिका–रक्तयुक्त होती है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

ग्रहणी

ग्रहणी अवयवगत विकृति जन्य रोग ग्रहणी नाम से ही उल्लेखित किया गया है। यह पाचनतंत्र या अन्न-पुरीषवह स्त्रोतस का प्रधान रोग है जिसमें अन्न पाचन एवं पुरीष निर्हरण से संबंधित लक्षण प्राप्त होते है तथा मंदाग्नि इसका प्रमुख हेतु माना गया है। आश्रय एवं आश्रयी को एक मानकर ग्रहणी आश्रित विकार को ग्रहणी रोग कहा गया है।

ग्रहणीमाश्रितोऽग्निदोषो ग्रहणी दोषः, एवं चाश्रयाश्रयिणोरभेदोपचाराद्।
ग्रहणीदोषशब्देन ग्रहव्याश्रितोऽग्निदोषोऽपिगृह्यते॥

(चक्रपाणि)

आचार्यों ने इसकी संप्राप्ति में अतिसार की निवृत्ति के पश्चात् मंदाग्नि और अहितकर आहार सेवन से इसकी उत्पत्ति बताई है। यह स्वतंत्र रूप से भी हो सकता है। अतः ग्रहणी स्वतंत्र एवं परतंत्र भी हो सकती है।

ग्रहणी के हेतु-लक्षण-संप्राप्ति

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः।
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत्॥
एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमामेव विमुञ्चति॥
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहर्द्रवम्।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमाहुएस्तयायुर्वेदविदो जनाः॥

(सु.उ.अ. 40)

अतिसार के निवृत्त हो जाने पर या जो अपथ्य का सेवन करते है तथा जिनकी अग्नि मंद है उनकी अग्नि वातादि दोषों से और अधिक विकृत होकर ग्रहणी को भी विकृत कर देती है। इस प्रकार किसी एक दोष, दो दोष या तीनों दोषों से विकृति को प्राप्त हुई ग्रहणी सेवन किए गए अन्न का कभी आमावस्था में कभी पक्वावस्था में बहुत बार त्याग करती है, जिससे मल दुर्गंध युक्त कभी बद्ध और कभी द्रवावस्था में वेदना के साथ निकलता है। इसे ग्रहणी कहा गया है।

ग्रहणी के पूर्वरूप

पूर्वरुपं तु तस्येदं तृष्णाऽऽलस्यं बलक्षयः।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात् कायस्य गौरवम्॥

(च.चि.अ. 15)

1. तृष्णा
2. आलस्य
3. बलक्षय
4. अन्न की विदग्धता
5. अन्न का देर से परिपाक
6. अंगगौरव

ये ग्रहणी के पूर्वरूप है।

ग्रहणी के भेद

कारण के आधार पर–1. स्वतंत्र 2. परतंत्र
दोषों के आधार पर–1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. सन्निपातज
माधव ने दो अन्य भेद वर्णित किए है–1. संग्रह ग्रहणी 2. घटीयंत्र ग्रहणी

ग्रहणी के सामान्य लक्षण

अतिसृष्टं विबद्धं वा द्रवं तदुपदिश्यते।
तृष्णारोचक वैरस्य प्रसेक तमकान्वितः॥
शूनपादकरः सास्थि पर्वरुक् छर्दनं ज्वरः।
लोहानुगंधिस्तिक्ताम्ल उद्गारश्चास्य जायते॥

(च.चि. 15/52, 53)

1. कभी अत्यधिक बंधा हुआ या कभी द्रवबहुल मल का त्याग।
2. भोजनोत्तर तुरंत अपक्व मल का त्याग।
3. तृष्णा
4. अरुचि
5. मुख में विरसता
6. तमः प्रवेश (आँखों के आगे अँधेरा छाना)

7. हस्त एवं पाद में शोथ
8. अस्थि एवं पर्वों में वेदना
9. छर्दि
10. ज्वर
11. उद्गार में लोहगंध तथा तिक्त एवं अम्लोद्गार

स्वतंत्र ग्रहणी–जो अपने कारणों से (मंदाग्नि) उत्पन्न हो।

परतंत्र ग्रहणी–जो ग्रहणी अतिसार निवृत्त हो जाने के पश्चात मिथ्या आहार विहार से, मंदाग्नि के कारण होती है।

दोषानुसार निदान लक्षण

दोष	निदान	लक्षण
1. वातज ग्रहणी	1. कटु, तिक्त, कषाय रस प्रधान अन्न का सेवन 2. अतिरुक्ष एवं दूषित भोजन का सेवन 3. अल्प भोजन करने 4. अनशन करने 5. अधिक मार्ग चलने, वेग-विधारण करने, अति मैथुन करने	1. अन्न का पाचन कष्टपूर्वक 2. अन्न का शुक्तपाक (अम्लपाक) 3. अंगों की कर्कशता 4. कण्ठ एवं मुख की शुष्कता 5. भूख एवं प्यास का लगना 6. तिमिर (नेत्रों से कम दिखना) 7. कानों में शब्द सूनाई पड़ना 8. पार्श्व, उरु, वंक्षण, ग्रीवा में वेदना 9. विसूचिका 10. हृदय में पीड़ा 11. कृशता, दुर्बलता 12. मुख की विरसता 13. परिकर्तिका 14. सभी रसों के सेवन की इच्छा 15. मनोवसाद 16. भोजन के पच जाने या पचते समय आध्मान 17. भोजन करने के तुरंत पश्चात् स्वस्थता की अनुभूति

		18. रोगी को वातिक गुल्म, हृदरोग, प्लीहा रोग की शंका रहती है। 19. कास एवं श्वास से पीड़ित 20. कष्टपूर्वक, देर से, कभी शुष्क, कभी द्रव, आम एवं फेन युक्त तथा शब्द युक्त-मल का बार-बार त्याग करता है।
2. पित्तज ग्रहणी	1. कटु, अजीर्ण, विदाही, अम्ल, क्षार आदि पित्तवर्धक आहार के सेवन से प्रकुपित पित्त पाचकाग्नि को आवृत्त कर नष्ट कर देता है।	1. रोगी का वर्णपीत हो जाता है। 2. अजीर्ण 3. नीलपीत या पीले वर्ण के द्रव मल का त्याग करता है। 4. दुर्गंधित एवं अम्ल उद्गार प्रवृत्ति 5. हृदय, कंठ में दाह 6. अरुचि एवं तृष्णा से पीड़ित
3. श्लैष्मिक ग्रहणी	1. अति गुरु, स्निग्ध एवं शीत भोजन से। 2. अति मात्रा में भोजन से। 3. दिन में भोजन करके तुरंत सो जाने से कफ प्रकुपित होकर अग्नि को नष्ट कर देता है।	1. अन्न का पाचन न होना या कष्टपूर्वक होना। 2. हृल्लास 3. छर्दि 4. अरोचक 5. मुख में लिप्तता एवं मधुरता 6. कास 7. ष्ठीवन 8. पीनस 9. हृदय घन द्रव से परिपूर्ण प्रतीत होता है। 10. उदर स्तिमित एवं गुरु प्रतीत होता है। 11. दुषित एवं मधुर उद्गार प्रवृत्ति 12. सदन (थकावट) 13. स्त्री संग की इच्छा का अभाव

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

		14. मल प्रवृत्ति आम, श्लेष्मा युक्त गुरु एवं भिन्न (ढिला) होती है। 15. अकृश होते हुए भी दुर्बलता 16. आलस्य
4. सन्निपानिक ग्रहणी	तीनों दोषों का निदान	तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण

संग्रहग्रहणी (संग्रहणी)–यह सन्निपातिक ग्रहणी की ही प्रवर्धमान अवस्था है। इसमें कुछ समय तक दोषों एवं मल का संग्रह होता है निर्हरण होता है अतः पहले संग्रह होकर बाद में निर्हरण होने से इसे संग्रह ग्रहणी कहते है (संग्रहणी)।

लक्षण

1. आंत्रकूजन
2. आलस्य
3. दुर्बलता
4. अग्निमांद्य
5. कटिशूल
6. रोगी द्रव, शीत, कभी घन, स्निग्ध, आम, पिच्छिल, अत्यधिक मात्रा में मल को शब्द एवं मंद वेदना के साथ त्यागता है।
7. इसका आक्रमण काल एक माह, पंद्रह दिन, दस दिन या प्रतिदिन भी हो सकता है।
8. इसका प्रकोप दिन में होता है तथा रात में शांत हो जाता है।
9. यह दुर्विज्ञेय, दुश्चिकित्स्य एवं चिरकालीन होता है।
10. यह सामवात जनित होता है।

घटीयंत्र ग्रहणी

स्वपतः पार्श्वयोः शूलं गलज्जलघटीध्वनिः।
तं वदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम्॥

(मा.नि.)

पानी में डूबते हुए घड़े की जिस तरह आवाज आती है ऐसी आवाज इस ग्रहणी रोग में आती है अतः इसे घटी यंत्र ग्रहणी कहते हैं।

लेटते हुए या सोते समय पार्श्व में शूल तथा जल में डूबते हुए घड़े की तरह ध्वनि निकलती है। इसे असाध्य कहा गया है। इसमें आंत्र की अत्यधिक दुर्बलता हो जाती है।

ग्रहणी की साध्यासाध्यता

लिङ्गैरसाध्यो ग्रहणीविकारो यैस्तैरतीसारगदो न सिध्येत्।
वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारो हत्वा तनुं नैव निवर्तते च॥
बालके ग्रहणी साध्या यूनिकृच्छ्रा समीरिता।
वृद्धे त्वसाध्या विज्ञेया मतं धन्वन्तरेदिदम्॥

(मा.नि.)

1. जो अतिसार के असाध्य लक्षण है वे ही ग्रहणी के भी है।
2. वृद्ध व्यक्ति में असाध्य
3. बालकों में साध्य
4. युवा में कृच्छ्साध्य

ग्रहणी रोग में भी मल की साम-निरामता अतिसार सदृश ही है।

गुल्म

गुल्म अर्थात् एक गोला या उभार। यह उदरगत एक ग्रंथीस्वरूप उभार होता है जो घटता बढ़ता है तथा संचरणशील या असंचरणशील होता है। प्रायः यह वात के कारण होता है। गुल्म में प्रायः पाक की प्रवृत्ति नहीं होती।

गुल्म की परिभाषा

हन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदिवाऽचलः।
वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः॥

(सु.उ. 42)

हृदय एवं नाभि के बीच में संचरणशील या अचल तथा गोल एवं घटने या बढ़ने वाली ग्रंथी को गुल्म कहते हैं।

गुल्म की संप्राप्ति एवं स्थान

दुष्य वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरुपिणम्।
तस्य पञ्चविधं स्थानं पा र्श्वहृन्नाभिवस्तयः॥

(मा.नि.)

मिथ्याआहार विहार के कारण दूषित वातादि दोष कोष्ठ के अंदर ग्रंथि स्वरूप पाँच प्रकार के गुल्म को उत्पन्न करते हैं। इनके पाँच स्थान है–दोनों पार्श्व, हृदय, नाभि एवं बस्ति।

गुल्म का पूर्वरूप

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि।
आटोप आध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम्॥

(वा.नि. 11)

1. उद्गार की अतिप्रवृत्ति
2. कोष्ठबद्धता
3. भोजन में अरुचि (तृप्ति)

4. शक्ति का ह्रास
5. आंत्र कूजन
6. आटोप
7. आध्मान
8. अपचन
9. पाचन शक्ति की कमी

ये गुल्म के पूर्वरूप है।

गुल्म के सामान्य लक्षण

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रवातताऽन्त्रविकूजनम्।
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत्॥

1. भोजन में अरुचि।
2. मल, मूत्र एवं वायु की प्रवृत्ति कष्टपूर्वक।
3. आंत्रकूजन (आंत्र में गुड़गुड़ाहट)।
4. आनाह।
5. उर्ध्ववात (उद्गार प्रवृत्ति)।

ये सामान्य लक्षण सभी गुल्मों में मिलते हैं।

गुल्म के भेद

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः॥

(सु.उ. 42)

गुल्म पाँच प्रकार का होता है–

1. वातज
2. पित्तज
3. कफज
4. सन्निपातज
5. रक्तज

प्रथम चार गुल्म पुरुष एवं स्त्री दोनों में होते हैं किंतु पाँचवा रक्तज गुल्म केवल स्त्रियों में होता है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

भेदानुसार निदान एवं लक्षण

भेद	निदान	लक्षण
1. वातज गुल्म	1. रुक्ष अन्नपान का सेवन 2. विषम एवं अतिमात्रा में भोजन 3. विरुद्धचेष्टा 4. वेगावरोध 5. शोक 6. अभिघात 7. अतिमलक्षय 8. अन्न का सर्वथा परित्याग	1. गुल्म के स्थान, संस्थान एवं पीड़ा का विकल्प अर्थात् अनियमित होना स्थानविकल्प अर्थात् कभी नाभि प्रदेश कभी पार्श्व आदि में होना। संस्थान विकल्प अर्थात् गुल्म की आकृति कभी गोल कभी लम्बी कभी बड़ी आदि होना रुजा विकल्प अर्थात् वेदना कभी कम, कभी अधिक, कभी तोदवत आदि होना। 2. मल एवं अधोवायु की रुकावट 3. कंठ एवं मुख का सूखना 4. श्याव एवं अरुण वर्णता 5. शीतज्वर 6. हृदय, कुक्षि, पार्श्व, अंस एवं सिर में पीड़ा 7. भोजन के पच जाने पर लक्षणों का अत्यधिक प्रकोप तथा भोजन करने के तुरंत पश्चात् लक्षणों का शमन 8. रुक्ष, कषाय, तिक्त एवं कटु पदार्थों से अनुपशय
2. पित्तज गुल्म	1. कटु, अम्ल, तीक्ष्णा, उष्ण, विदाही, रूक्ष पदार्थों का सेवन 2. अतिक्रोध 3. अतिमद्यपान 4. सूर्य एवं अग्नि का अतिसंपर्क 5. आम (विदग्धाजीर्ण)	1. ज्वर 2. तृष्णा 3. मुख एवं शरीर का लाल होना 4. भोजन के पाचनकाल में तीव्र उदरशूल 5. स्वेदाधिक्य 6. विदाह

	6. अभिघात	7. गुल्म में व्रण की तरह स्पर्शा सह्यता
3. कफज गुल्म	1. अतिशीत, गुरु एवं स्निग्ध पदार्थों का सेवन 2. अतिमात्रा में भोजन 3. दिवास्वप्न	1. शरीर गीला सा प्रतीत होता है। (स्तैमित्य) 2. शीतज्वर 3. अंगों में शिथिलता (अंगसाद) 4. हल्लास 5. कास 6. अरुचि 7. गुरुता 8. शीतता की अनुभूति 9. मंद वेदना 10. गुल्म कठोर एवं उभरा हुआ
4. सन्निपातिज गुल्म		1. पीड़ा एवं दाह की अधिकता 2. गुल्म पत्थर की तरह घन एवं उन्नत 3. शीघ्र विदाही (पाक होने वाला) 4. दारुण (भयंकर) 5. मल, शरीर, अग्नि एवं बल का नाश यह असाध्य है।
5. रक्तज गुल्म	1. नवीन प्रसूता स्त्री में 2. गर्भस्त्राव या गर्भपात होने पर तथा 3. आर्तवप्रवृत्तिकाल में जो स्त्री मिथ्याआहार विहार करती है उसका वायु प्रकुपित होकर रक्त को अवरुद्ध कर गुल्म उत्पन्न करता है।	1. पैत्तिक गुल्म के सदृश लक्षण 2. गर्भ के सदृश सभी लक्षण 3. पिंडरूप में हस्त पाद आदि अंगों का स्पंदन नहीं होता 4. देर-देर से पीड़ा युक्त स्पंदन 5. केवल स्त्रियों में होता है। 6. दस माह बीत जाने पर चिकित्सा करनी चाहिए।

गुल्म की साध्सासाध्यता

1. धीरे-धीरे बढ़ने वाला
2. संपूर्ण उदर को व्याप्त करने वाला
3. जिसने जड़ पकड़ ली हो

4. सिराजाल युक्त
5. कछुए की तरह उभरा हुआ
6. दौर्बल्य, अरुचि, हल्लास युक्त
7. काल, छर्दि, अरति, ज्वर युक्त
8. तृष्णा, तंद्रा, प्रतिश्याय युक्त
9. ज्वर, श्वास, वमन, अतिसार पीड़ित
10. हृदप्रदेश, नाभिप्रदेश, हस्त-पाद में शोथ
11. श्वास, उदरशूल, तृष्णा, अरुचि, ग्रंथिका अचानक लुप्त हो जाना एवं दुर्बलता ये सब गुल्म के असाध्य लक्षण है।

उदररोग

विभिन्न कारणों से उदर में होने वाली वृद्धि या उत्सेध को उदररोग कहा गया है। इसमें मुख्यतः उदर में शोथ (फुलाव), शूल एवं संग ये लक्षण प्रायः मिलते हैं। उदरगतवृद्धि या उत्सेध कई कारणों से हो सकता है परंतु आचार्यों ने मंदाग्नि को उदररोग का मुख्य हेतु बताया है। सभी उदररोग चिकित्सा न करने पर जलोदर में परिवर्तित हो जाते हैं।

निदान

"रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनै श्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात्॥"

(वा.नि. 12)

1. अग्नि के मंद होने से।
2. अजीर्ण से।
3. मलिन (गंदे) अन्न के सेवन से।
4. मलसंचय

इन कारणों से उदररोग की उत्पत्ति होती है।

उपरोक्त निदानों के अलावा–

1. अतिउष्ण, लवण, क्षार, विदाही, अम्ल एवं गुरु रुक्ष पदार्थों का सेवन।
2. विरुद्ध, अपवित्र आहार का सेवन।
3. पंचकर्म एवं संसर्जन क्रम के ठीक से न होने से।
4. विषसेवन।
5. आम से।
6. वेग विधारण।
7. दोषों के अतिसंचय।
8. प्लीहा, अर्श, ग्रहणी दोष आदि से।
9. पापकर्म से उदररोग होते हैं।

उदररोग की सम्प्राप्ति

रुद्धवा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्त्रोतांसि संचिताः।
प्राणाग्न्यपानान् संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम्॥

(च.चि. 13)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

स्वेदवाही एवं जलवाही स्त्रोतों में अवरोध उत्पन्न करके संचित हुए दोष प्राण अग्नि एवं अपान को दूषित करके उदर रोगों को उत्पन्न करते हैं।

उदररोग के पूर्वरूप

1. क्षुधा नाश।
2. मधुर, स्निग्ध एवं गुरु अन्न का देर से पाक।
3. खाए हुए अन्न का विदग्ध पाक।
4. चलने में असमर्थता।
5. पाद शोथ।
6. अल्प व्यायाम से सांस फूलना।
7. मल एवं वायु की प्रवृत्ति में बाधा।
8. उदावर्त।
9. बस्ति एवं संधि में वेदना।
10. आध्मान।
11. अल्प एवं लघु भोजन करने पर भी पेट का फूलना।

उदररोग के सामान्य लक्षण

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता।
शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः॥

(मा.नि.)

दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि।

1. आध्मान
2. चलने-फिरने में असमर्थता (शक्तिहीनता)
3. दुर्बलता
4. अग्नि की दुर्बलता
5. शोथ
6. अंगों में शिथिलता
7. वात एवं पुरीष का अवरोध
8. दाह
9. तन्द्रा

ये सामान्य लक्षण सभी उदररोगों में पाए जाते हैं।

उदररोग के भेद/संख्या

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः।
संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् श्रृणु।

(सु.नि. 7)

8 भेद–1. वातोदर 2. पित्तोदर 3. कफोदर 4. सन्निपातोदर 5. प्लीहोदर 6. बद्धबुदोदर 7. क्षतोदर 8. जलोदर

भेदानुसार लक्षण

वातोदर	कफादर	पित्तोदर
1. हस्त, पाद, नाभि एवं कुक्षि में शोथ	1. अंगों में अवसाद।	1. ज्वर।
2. कुक्षि, पार्श्व, उदर, कटि, पृष्ठ में वेदना।	2. शून्यता।	2. मूर्च्छा।
3. पर्वभेद।	3. शोथ।	3. दाह।
4. शुष्क कास।	4. गुरुता।	4. तिक्त एवं कटुकास्यता।
5. अंगमर्द।	5. निद्रा।	5. भ्रम।
6. शरीर के नीचे के प्रदेश में गुरुता।	6. उत्क्लेश (मिचली)।	6. अतिसार।
7. मलसंचय।	7. अरुचि।	7. त्वचा आदि की पीतवर्णता
8. त्वचा आदि का वर्ण श्याव अरुण होना।	8. श्वास।	8. उदर का हरापन
9. उदर की अकस्मात वृद्धि या ह्रास।	9. कास।	9. उदर का पीत एवं ताम्र वर्ण की सिराओं से व्याप्त रहना।
10. उदर में तोदवत या भेदनवत वेदना।	10. त्वचा आदि की श्वेत वर्णता।	10. स्वेद, उष्णता, दाह
11. उदर का पतली एवं कृष्ण सिराओं से व्याप्त होना।	11. उदर का स्तिमित स्निग्ध बड़ा एवं श्वेत वर्ण की धारियों से व्याप्त होना।	11. धुआँ निकलने की प्रतीती
12. आध्मान।	12. चिरकाल तक फुलाव बना रहता है।	12. उदर का स्पर्श मृदु
13. अंगुली द्वारा ताड़न करने पर वायु से भरी मशक के समान ध्वनि आना।	13. स्पर्श में कठिन, शीत, गुरु एवं स्थिर प्रतीत होता है।	13. शीघ्र पकने वाला
14. वायु का पीड़ा एवं शब्द करते हुए संपूर्ण उदर में घूमना।		

भेद	निदान	लक्षण
सन्निपातोदर (दूष्योदर)	1. स्त्री द्वारा अन्नपान में नख, केश, (लोम), मूत्र, मल, आर्तव आदि मिलाया (खिलाया) जाना। 2. स्त्री या शत्रु द्वारा विषयुक्त भोजन देना। 3. दूषित जलपान। 4. दूषि विष का सेवन– इन कारणों से तीनों दोष एवं रक्त दूषित होकर सन्निपातोदर उत्पन्न करते हैं।	1. ठंडी हवा एवं दुर्दिन में लक्षणों में वृद्धि एवं दाह। 2. रोगी बार-बार मूर्च्छित होता है। 3. रोगी पांडु, कृशता, शोष एवं तृष्णा से पीड़ित रहता है। इसे दूष्योदर भी कहते हैं।
प्लीहोदर	1. विदाही एवं अभिष्यंदि पदार्थों का अति सेवन करने से रक्त एवं कफ प्रकुपित होकर प्लीहा को बढ़ाते है जिससे प्लीहोदर की उत्पत्ति होती है।	1. मंदज्वर 2. मंदाग्नि 3. बलक्षय 4. पीतवर्णता 5. कफ एवं पित्त के लक्षण एवं उपद्रव 6. वाम पार्श्व में उदर वृद्धि
यकृत्दाल्युदर	प्लीहोदर के निधान	प्लीहोदर के समान ही लक्षण बस दक्षिण पार्श्व में उदर वृद्धि। दोषानुसार लक्षण वातिक–उदावर्त, वेदनां, आनाह पैत्तिक–मूर्च्छा, तृष्णा, दाह, ज्वर श्लैष्मिक–उदर में भारीपन, अरुचि, कठिनता।
बद्धगुदोदर	1. पिच्छिल अन्न, मल के अश्मरी आदि से जिसका आंत्र अवरुद्ध हो जाता है। 2. आंत्र में दोषयुक्त मल का धीरे-धीरे संचय होना।	1. मल का आंत्र या गुदा में अवरुद्ध होकर थोड़ा-थोड़ा निकलना। 2. हृदय एवं नाभि के बीच में आध्मान।
परिस्त्रावी उदर	1. अन्न के साथ यदि किसी अन्य शल्य का सेवन हो जाए। 2. किसी अन्य तरह से कोई शल्य आंत्र में प्रवेश कर जाए।	1. आंत्र में छेद होकर जल सदृश स्त्राव का होना। 2. स्त्राव का उदर में संचित होकर गुदमार्ग से निकलना। 3. नाभि के निम्न प्रदेश में उदरवृद्धि। 4. उदर में तोदवत एवं दलनवत वेदना।

जलोदर (दकोदर)	1. स्नेहपान, अनुवासन बस्ति, वमन, विरेचन, निरुहबस्ति के पश्चात् तुरंत शीतल जल का पान करने से जलवाहिस्त्रोत दूषित होकर या स्त्रोतों के स्नेह से लिप्त होने के कारण जलसंचय होकर जलोदर होता है।	1. उदर स्निग्ध, बड़ा। 2. परिवृत्तनाभि (नाभि पलट जाती है।) 3. उदर का जल से भरा होना। 4. जल से भरी हुई मशक के सदृश उदर में क्षोभ, कंपन एवं ध्वनि होती है।

आचार्यचरक ने जातोदक एवं अजातोदक के लक्षण बताए है।

अजातोदक (जलसंचय रहित)	शोथ अल्प, आटोप, उदर रक्तवर्ण, सिराजाल युक्त, हृदय नाभि वंक्षण गुदा में शूल, मंदाग्नि, मूत्र अल्प, पुरीष कठिन, बंधा हुआ।
जातोदक (जल संचय युक्त)	कुक्षि की अत्यधिक वृद्धि, सिराओं का छिप जाना, जल से पूर्ण मशक के समान क्षोभ, स्पर्श एवं स्निग्धता।

उदररोग की साध्यासाध्यता

1. सभी उदररोग कृच्छ्रसाध्य होते हैं।
2. बलवान रोगी में जलसंचय होने पर भी प्रयत्न करने पर साध्य।
3. बद्धगुदोदर पंद्रह दिनों तक ठीक न होने पर असाध्य।
4. जलोदर एवं परिस्त्रावी उदर प्रायः असाध्य।
5. जिस रोगी की आँखों में शोथ हो, मूत्रेंद्रिय टेढ़ी हो गई हो।
6. जिसकी त्वचा पतली एवं गीली हो।
7. जिसके बल, रक्त, मांस, अग्नि का क्षय हो गया हो।
8. पार्श्व भंग हो गया हो।
9. अरुचि, शोथ एवं अतिसार से पीड़ित हो।
10. विरेचन के उपरांत भी उदर भरा रहे।
11. चिरकालीन एवं अतिवृद्ध हो।

ये सब असाध्य है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

आनाह-आध्मान-आटोप

आनाह–मलमूत्र आदि के अवरोध से युक्त आध्मान को आनाह कहते हैं।

आध्मान–केवल मात्र पेट के फूलने की अवस्था हो आध्मान कहते हैं।

आटोप–पेट में गड़गड़ाहट सदृश शब्दों का होना, मलप्रवृत्ति होती है, आध्मान हो भी सकता है नहीं भी।

तीनों ही अवस्थाएँ वातवृद्धिजन्य है, प्रकुपित वायु जब पक्वाशय में स्थान संश्रय करता है तब आनाह, आटोप या आध्मान की अवस्था उत्पन्न होती है।

विसूचिका–अलसक–विलंबिका

सुई चुभने की तरह वेदना संपूर्ण शरीर में विशेषकर उदर में जिस रोग में होती है उसे विसूचिका कहते हैं।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः।
यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते॥

अजीर्ण के कारण प्रकुपित वायु जिस रोग में सुई चुभने जैसी पीड़ा संपूर्ण शरीर में उत्पन्न करता हुआ स्थिर रहता है, उस रोग को वैद्य विसूचिका कहते हैं।

विसूचिका में छर्दि और अतिसार दोनों लक्षण एक साथ मिलते हैं। आचार्य चरकानुसार–

"ऊद्र्ध्वं चाधश्च प्रवृत्तामदोषां यथोक्तरुपां विसूची विद्यात्।–

उर्ध्व एवं अधो उभयमार्ग से आमप्रवृत्ति होने को या दोषों की प्रवृत्ति को विसूचिका कहा गया है।

कारण

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम्।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका॥

(सु.उ. 56)

आम, विष्टब्ध एवं विदग्धाजीर्ण से विसूचिका, अलसक एवं विलंबिका की उत्पत्ति होती है।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः॥

(सु.उ. 56)

परिमित अर्थात् सीमित मात्रा में आहार करने वाले व्यक्तियों को यह रोग नहीं होता, जो लोग भोजन के लालची, संयमरहित एवं मूर्ख होते हैं वे ही इससे पीड़ित होते है।

विसूचिका लक्षण

मूर्च्छाऽतिसारो वमथुः पिपासा शूलो भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः॥

(सु.उ.अ. 56)

1. मूर्च्छा
2. अतिसार
3. वमन
4. तृष्णा
5. शूल
6. भ्रम
7. उद्वेष्टन (ऐंठन)
8. जृम्भा
9. दाह
10. विवर्णता
11. कम्प
12. हृद्शूल
13. शिरोवेदना

ये लक्षण मिलते हैं।

विसूचिका उपद्रव

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता।
अमी ह्युपद्रवा घोरा विसूच्यां पञ्च दारुणः॥

1. निद्रानाश
2. अरति
3. कम्प
4. मूत्राघात
5. संज्ञानाश

ये पाँच विसूचिका के भयंकर उपद्रव है।

अलसक

आमाशय में अन्न का अपक्व अवस्था में आलसी की तरह पड़े रहना तथा किसी भी मार्ग से बाहर न निकलना अलसक कहलाता है मल एवं अधोवायु की प्रवृत्ति भी रुक जाती है। इसमें वात के साथ कफ का अनुबंध रहता है। कफ द्वारा मार्गावरोध होता है।

अलसक का लक्षण

कुक्षिरानहयतेऽत्यर्थं प्रताम्येत् परिकूजति।
निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति॥
वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदप्ति।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च स्यतु॥

(सु.उ.अ. 56)

1. कुक्षि में आनाह (फुलाव)
2. तमः प्रवेश या मूर्च्छा
3. आंत्रकूजन
4. रुके हुए अधोवायु का कुक्षि के उपरी प्रदेश में उर्ध्वगमन
5. अधोवायु एवं मल का पूर्णतया अवरोध।
6. तृष्णा।
7. उद्गार प्रवृत्ति।

ये अलसक के लक्षण है।

दंडालसक

अलसक के ही उग्र एवं असाध्य लक्षणों को दंडालसक कहा गया है। इसमें आम की अत्यधिकता होती है। आमविष संपूर्ण शरीर में फैलकर शरीर को दंड (डंडे/लकड़ी) के समान स्तब्ध कर देता है (अकड़ा देता है) अतः इसे दंडालसक कहते है। यह असाध्य है।

प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न विपच्यते।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः॥

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

विलंबिका

अलसक के समान ही विलंबिका में भी दोष एवं मल प्रवृत्ति का अवरोध हो जाता है। अलसक में लक्षण मृदु होते है तथा रोग साध्य होता है जबकि विलंबिका में लक्षण उग्र तथा रोग कष्टसाध्य या असाध्य होता है।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य।
विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥

(सु.उ.तं.अ. 56)

कफ एवं वायु से दूषित अन्न जब उर्ध्व या अधो किसी भी मार्ग से बाहर नहीं निकल पाता उस अवस्था को शास्त्रज्ञ विलंबिका कहते हैं। यह दुश्चिकित्स्य है।

विसूचिका एवं अलसक के असाध्य लक्षण–1. दंत, ओष्ठ एवं नख की श्यावता (नीलवर्णता) 2. संज्ञाहीनता (मूर्च्छा) 3. वमन 4. नेत्र अंदर घंस गए हो। 5. स्वर क्षीण हो गया हो। 6. संधिबंधन शिथिल हो गए हो। 7. उसे मरणासन्न समझे।

X. मूत्रवह स्त्रोतस के रोग

मूत्रकृच्छ्र-मूत्राघात

मूत्रकृच्छ्र

आचार्य चरक ने चिकित्सास्थान के 26वें अध्याय में बस्ति रोगांतर्गत मूत्रकृच्छ्र का विस्तृत वर्णन किया है।

इसकी निरुक्ति है–

मूत्रस्य कृच्छ्रेण महता दुःखेन प्रवृत्तिः।

मूत्र की कष्टपूर्वक प्रवृत्ति मूत्रकृच्छ्र कहलाती है।

मूत्रकृच्छ्र में मूत्र बनता बराबर है, बस्ति भी मूत्र से पूरीपूर्ण रहती है, मूत्रत्याग की इच्छा भी होती है किंतु मूत्रमार्ग में कहीं पर अवरोध होने से मूत्र की प्रवृत्ति कष्टपूर्वक होती है। जबकी मूत्राघात में मूत्र ठीक से बनता ही नहीं।

मूत्रकृच्छ्र के निदान

1. अतिव्यायाम
2. अति तीक्ष्ण औषध के सेवन
3. रुक्ष मद्यपान से
4. शीघ्रगति वाले घोड़े आदि की सवारी
5. आनूप मांस का अतिसेवन
6. अध्यशन
7. अजीर्ण

मूत्रकृच्छ्र की संप्राप्ति

उपरोक्त कारणों से प्रकुपित दोष अलग-अलग या एकसाथ प्रकुपित होकर बस्ति में जाकर मूत्रमार्ग को पीड़ित करते हुए उसमें संकोच दबाव या क्षोभ आदि उत्पन्न करके मूत्र त्याग के समय पीड़ा उत्पन्न करते है, इसे मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

मूत्रकृच्छ्र के भेद

मूत्रकृच्छ्र के आठभेद किए गए है–

1. वातज मूत्रकृच्छ्र
2. पित्तज मूत्रकृच्छ्र
3. कफज मूत्रकृच्छ्र
4. सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र
5. शल्याभिघातज मूत्रकृच्छ्र
6. शकृद्विघातज मूत्रकृच्छ्र (शकृतज् मूत्रकृच्छ्र)
7. अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र
8. शुक्रज मूत्रकृच्छ्र

शर्करा–अश्मरी के ही छोटे-छोटे टुकड़ों को शर्करा कहते हैं। अश्मरी के पित्त द्वारापाचित होने, वायु द्वारा शुष्क होने एवं कफ के नष्ट होने से अश्मरी के टुकड़े होकर वह शर्करा के रूप में मूत्रमार्ग से बाहर निकलती है इससे हृद प्रदेश में पीड़ा, कंपन, कुक्षिशूल, अग्निमांद्य, मूर्च्छा आदि लक्षण होते है शर्करा के मूत्रमार्ग से निकल जाने पर वेदना शांत हो जाती है।

सिकता–शर्करा के छोटे टुकड़े सिकता कहलाते है, इनके मूत्रमार्ग द्वारा निकलने को सिकतामेह कहते हैं।

मूत्राघात

मूत्राघात में मूत्र की उत्पत्ति कम होती है या नहीं होती तथा मूत्रप्रवृत्ति में अवरोध विशेषतया रहता है।

निदान

मलमूत्रादि के वेगों का अवरोध करने तथा रुक्षादि पदार्थों के सेवन से दोष प्रकुपित होकर तेरह प्रकार के मूत्राघातों को उत्पन्न करते है।

भेदानुसार लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	सन्निपातज	शल्यज	शकृतज	अश्मरीज	शुक्रज
वंक्षण प्रदेश बस्ति प्रदेश एवं मूत्रेंद्रिय में भयंकर पीड़ा	मूत्र पीत वर्ण का रक्तयुक्त मूत्रत्याग के समय पीड़ा एवं दाह	बस्ति प्रदेश एवं मूत्रेंद्रिय में भारीपन एवं शोथ मूत्र में पिच्छिलता	सभी दोषों के सम्मिलित लक्षण	मूत्रवाहि स्त्रोतों में आभ्यांतर शल्य या बाह्य आघात के कारण क्षत होने के होने से भयंकर पीड़ा तथा वातिक मूत्रकृच्छ्र के समान अन्य लक्षण।	मल का वेग रोकने से वायु प्रतिलोम होकर उदर में आध्मान, वातिक शूल एवं मूत्रसंग उत्पन्न होता है	मूत्रमार्ग में अश्मरी की उपस्थिति के कारण होने वाला मूत्रकृच्छ्र अश्मरीज कहलाता है। –हृदशूल –हस्तपाद कंप –कुक्षि एवं बस्तिशूल –मंदाग्नि –मूर्च्छा –होती है।	अपने मार्ग से च्युत शुक्र जब प्रकुपित दोषों द्वारा अवरुद्ध हो जाता है तो मूत्रमार्ग में रुक जाता है तथा मूत्रप्रवृत्ति के समय रोगी को शुक्र के साथ कष्टपूर्वक मूत्रप्रवृत्ति होती है तथा बस्ति वंक्षण एवं मेढ्र में वेदना होती है

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

मूत्राघात के भेद 13 भेद

1. वातकुंडलिका 2. अष्ठीला 3. वातबस्ति 4. मूत्रातीत 5. मूत्रजठर 6. मूत्रोत्संग 7. मूत्रक्षय 8. मूत्रग्रंथि 9. मूत्रशुक्र 10. उष्णवात 11. मूत्रसाद 12. विड्विघात 13. बस्तिकुंडल।

भेदानुसार लक्षण

भेद	लक्षण
1. वातकुण्डलिका	रुक्षपदार्थों के सेवन एवं वेगावरोध के कारण प्रकुपित बस्तिगत वायु मूत्र में आश्रित होकर कुंडलाकार हो जाता है। –बस्ति में शूल, मूत्र अल्प, अल्प मात्रा में तथा वेदनायुक्त, –यह अत्यंत कष्टदायक है।
2. अष्ठीला	बस्तिगत प्रकुपित वायु बस्ति तथा गुदा में आध्मान उत्पन्न करके चल एवं उभरी हुई ग्रंथी उत्पन्न करता है इसे अष्ठीला कहते है। –इसमें मलमूत्र में अवरोध एवं तीव्र वेदना होती है।
3. वातबस्ति	मूत्र के वेग को रोकने से बस्ति स्थित वायु बस्तिमुख में अवरोध उत्पन्न कर देता है। –इससे मूत्रप्रवृत्ति पूर्णतया रुक जाती है, बस्ति एवं कुक्षि में वेदना होती है –यह कृच्छ्रसाध्य है।
4. मूत्रातीत	अधिक देर तक मूत्र रोकने से मूत्र की प्रवृत्ति जल्दी से नहीं होती, मूत्र धीरे-धीरे उतरता है।
5. मूत्रजठर	मूत्र का वेग रोकने से बस्तिगत अपान वायु प्रकुपित होकर आध्मान उत्पन्न करता है, नाभि के नीचे के प्रदेश में तीव्र वेदनायुक्त आध्मान उत्पन्न करके बस्तिमुख में अवरोध उत्पन्न करता है।
6. मूत्रोत्संग	मूत्रत्याग करते हुए मनुष्य का मूत्र प्रवृत्त होकर बस्ति, शिश्ननाल या शिश्नमणि में रुक जाता है, जोर लगाने पर सरक्त या धीरे-धीरे, अल्पमात्रा में, वेदनायुक्त या वेदनारहित निकलता है।
7. मूत्रक्षय	रुक्ष एवं क्षीण शरीर वाले व्यक्ति के बस्ति में पित्त एवं वायु प्रकुपित होकर मूत्रक्षय वेदना एवं दाह उत्पन्न करते हैं।
8. मूत्रग्रंथि	बस्तिमुख के अंदर गोल, स्थिर, छोटी ग्रंथि, अश्मरी के समान वेदना देने वाली अकस्मात उत्पन्न हो जाती है।
9. मूत्रशुक्र	मूत्र का वेग रहते हुए स्त्री संभोग करने वाले पुरुष का वायु प्रकुपित हो जाता है, इस वायु से अवरुद्ध तथा अपने स्थान से च्युत शुक्र मूत्र के पहले या बाद में निकलता है जिससे मूत्र चूने के पानी की तरह निकलता है।

10. उष्णवात	अति व्यायाम, अतिपैदल चलने, अति धूप सेवन से प्रकुपित वायु पित्त सहित बस्ति में जाकर बस्ति, मेढ्र, गुदा में दाह उत्पन्न करता है तथा हारिद्र मूत्र या रक्तमिश्रित या केवल रक्त का स्राव करता है, कष्ट के साथ बार-बार मूत्रत्याग करता है।
11. मूत्रसाद	पित्त तथा कफ अलग-अलग या दोनों प्रकुपित वायु द्वारा गाढ़े हो जाते हैं जिससे रोगी कष्टपूर्वक पीत, रक्त, श्वेत तथा घन दाहयुक्त, गोरोचना या शंखचूर्ण के वर्ण के समान, शुष्क तथा सभी दोषों के वर्ण के समान मूत्रत्याग करता है।
12. विड्विघात	रुक्ष या दुर्बल मनुष्य का मल वायु से उदावृत होकर मूत्रमार्ग में पहुँच जाता है तब रोगी मल से युक्त या मल की गंध वाले मूत्र को पीड़ा के साथ त्यागता है।
13. बस्तिकुण्डल	–जल्दी-जल्दी चलने, कूदने, अतिश्रम करने, आघात से, दबाब से बस्ति अपने स्थान से उलटकर या उपर उठ कर गर्भ के समान प्रतीत होती है। –बस्ति में शूल, स्पंदन, दाह –मूत्र बूँद-बूँद करके थोड़ा-थोड़ा आता है। –बस्ति को दबाने पर मूत्र की धार निकल पड़ती है। –शरीर जकड़ जाता है, ऐंठन होती है। –यह शस्त्र या शस्त्र में बुझे विष की तरह भयंकर है। –वात की प्रबलता रहती है। –अल्पबुद्धि वालों के लिए दुश्चिकित्स्य है। –पित्तानुबंध होने पर दाह, शूल, विवर्णता (मूत्र में) कफानुबंध होने पर गौरव, शोथ, मूत्र स्निग्ध श्वेत।

बस्तिकुण्डल की साध्यासाध्यता

–पित्त की प्रबलता तथा कफ द्वारा मूत्रमार्ग में अवरोध होने पर असाध्य।

–मूत्रमार्ग बंद न होने पर या कुंडलीकृत होने पर साध्य।

बस्ति के कुंडलीभूत होने पर तृष्णा, मूर्च्छा, श्वास ये लक्षण होते हैं।

अश्मरी

अश्मरी से यहाँ वृक्क या बस्तिगत अश्मरी का ग्रहण किया जाता है। प्रकुपित वातादि दोष मूत्र को सूखाकर अश्मरी को उत्पन्न करते हैं।

अश्मरी की संप्राप्ति

बस्तिगत शुक्र, मूत्र, पित्त या कफ को जब वायु दूषित करके सूखा देता है तो गौर के पित्ताशय में पित्त के सूखने से उत्पन्न रोचना के सदृश अश्मरी उत्पन्न होती है। सभी अश्मरी त्रिदोषज होती है।

अश्मरी के पूर्वरूप

अथासां पूर्वलक्षणम्।
बस्त्याध्मानं तदासन्नेदशेषु परितोऽतिरुक्॥
मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः॥

(वा.नि. 9)

1. मूत्राशय में आध्मान।
2. बस्ति तथा उसके आसपास के प्रदेश में तीव्र पीड़ा।
3. मूत्र में बकरे के समान गंध।
4. मूत्रकृच्छ्र।
5. ज्वर।
6. अरुचि।

अश्मरी के सामान्य लक्षण

1. नाभि, सेवनी, बस्तिशिर में पीड़ा।
2. मूत्रमार्ग में अश्मरी द्वारा अवरोध होने पर मूत्र कई धाराओं में निकलता है।
3. मूत्रमार्ग से अश्मरी के हट जाने पर रोगी स्वच्छ या गोमेद के समान कुछ रक्तवर्ण के मूत्र का त्याग आसानी से करता है।
4. अश्मरी की रगड़ से बस्ति में क्षत होने पर मूत्र में रक्त आने लगता है।

5. मार्ग में अश्मरी रहने पर यदि जबरदस्ती मूत्रत्याग की कोशिश की जाए तो भयंकर पीड़ा होती है।

अश्मरी के भेद

अश्मरी के चार भेद हैं–

1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. शुक्रज।

भेदानुसार अश्मरी के लक्षण

भेद	लक्षण
1. वातजाश्मरी	–अत्यंत तीव्र पीड़ा –रोगी दाँतों से होंठों को काटने लगता है, कांपता है। –मूत्रेंद्रिय को हाथ से बार-बार पकड़ता है और कराहते हुए नाभि को दबाता है। –अपानवायु के साथ मल का भी त्याग हो जाता है। –बार-बार कठिनाई से बूँद-बूँद मूत्र का त्याग करता है। –अश्मरी धूसर वर्ण की तथा काँटों के समान उभारों से व्याप्त होती है। –चरक ने इसे कदंबपुष्पाकृति कहा है।
2. पित्तज अश्मरी	–बस्ति में दाह एवं पच्यमान व्रण के सदृश उष्णता –अश्मरी की आकृति भल्लातक की गुठली के समान होती है तथा इसका वर्ण लाल-पीला या काला होता है।
3. कफज अश्मरी	–बस्ति में तोद, शीतलता एवं भारीपन। –अश्मरी अन्य अश्मरियों की अपेक्षा अधिक बड़ी एवं स्निग्ध होती है, इसका वर्ण शहद के समान एवं श्वेत होता है।
4. शुक्राश्मरी	–यह वयस्क पुरुषों में शुक्र के वेग को धारण करने से होता है। –अपने स्थान से निकला हुआ शुक्र वेगधारण करने से दोनों अंडकोषों के बीच रुक जाता है। इसको वायु सुखा देता है, जिसके कारण यह शुक्र अश्मरी तुल्य हो जाता है। –बस्ती प्रदेश में वेदना, मूत्रकृच्छ्र एवं अंडकोषों में शोथ। –अश्मरी के स्थान में दबाने पर अश्मरी विलीन हो जाती है और शुक्र मूत्रमार्ग से निकल जाता है।

साध्यता–दोषज अश्मरियाँ प्रायः बच्चों में होती है तथा शल्यक्रिया द्वारा आसानी से निकाली जा सकती है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

XI. स्वेदवहस्त्रोतस के रोग

खालित्य-पालित्य

क्षुद्ररोगों के अंतर्गत इनका वर्णन मिलता है। सुश्रुत निदानस्थान अध्याय तेरह में त्वक् के विकारों के अंतर्गत क्षुद्ररोगों में इनका वर्णन है। खालित्य को आम भाषा में बालों का झड़ना या गंजापन कहते हैं। इसे ही इंद्रलुप्त, रुज्या या रुह्या भी कहा गया है। इंद्रलुप्त, खालित्य एवं रुह्या को गंजेपन के लिए समानार्थी लिया गया है। आचार्य वाग्भट्ट ने बालों का सहसा गिरना इंद्रलुप्त एवं धीरे-धीरे गिरना खालित्य माना है। आचार्य कार्तिक ने दाढ़ी-मूँछ के बालों का गिरना इंद्रलुप्त, सिर के बालों का गिरना खालित्य एवं सर्वांग के बालों का गिरना-रुह्या माना है।

खालित्य

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम्।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते॥

(सु.नि. 13)

पित्त (भ्राजक) वात के साथ मिलकर रोमकूपों में जाकर बालों को गिरा देता है तथा उसके बाद रक्त के साथ कफ मिलकर रोमकूपों को बंद कर देते है, जिससे उस स्थान पर दूसरे बालों की उत्पत्ति नहीं होती, इस रोग को इंद्रलुप्त, खालित्य या रुह्या कहते हैं।

Alopecia से इसे correlate किया जा सकता है। आचार्य विदेह के अनुसार यह रोग स्त्रियों को नहीं होता।

पालित्य/पलित

बालों का पकना या सफेद होना पलित या पालित्य कहलाता है।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते॥

(सु.नि. 13)

क्रोध, शोक एवं श्रम से उत्पन्न हुई शारीरिक उष्मा और पित्त सिर में जाकर बालों को पका देते हैं, इससे पलित (बालों का पकना/ सफेद होना) रोग की उत्पत्ति होती है।

आचार्य चरकानुसार

तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिं दग्ध्वा तु कुर्यात् खलिति नरस्य।
किंचित्तु दग्ध्वा पलितानि कुर्याद्धरित्प्रभत्वं च शिरोरुहाणाम्॥

चरकाचार्य ने पित्त के साथ-साथ वायु की कारणता भी मानी है। पित्त वातादि के साथ मिलकर केशभूमि को दग्ध कर खालित्य को उत्पन्न करता है या अल्प दग्ध कर सिर के बालों को श्वेत कर देते है इसे पलित कहते हैं।

XII. मनोवह स्त्रोतस के रोग

अपस्मार

स्मृति के नाश को अपस्मार कहते हैं।

"अपगता स्मृतिरिति अपस्मारः।"

जिस रोग में स्मरणशक्ति का लोप हो जाता है।

"अपगतः स्मारो यस्मिन् रोगे सोऽपस्मारः।
स्मृतेरपगमं प्राहुरपस्मारं भिषिग्विदः।"

(च.चि. 10)

उन्माद की तरह ही यह भी एक मानसिक विकार है। चरक निदान स्थान आठवें अध्याय में इसका वर्णन प्राप्त होता है। भगवान आत्रेय ने उन्माद के बाद अपस्मार रोग की व्याख्या की थी इस रोग की उत्पत्ति के विषय में जो कथा चरकाचार्य ने वर्णित की है वह इस प्रकार है–दक्षप्रजापति के यज्ञविध्वंस के समय भागते हुए लोगों में विभिन्न भूतों एवं अपवित्र वसतुओं के स्पर्श से अपस्मार की उत्पत्ति हुई, भय उत्पादक एवं मनोघ्न कारणों से इसकी उत्पत्ति बताई गई है। उन्माद में बुद्धिविभ्रम उत्पन्न होता है जबकि अपस्मार में आक्षेप के साथ स्मृतिनाश होता है। उन्माद स्थायी होता है, जबकि अपस्मार के दौरे पड़ते है।

अपस्मार की परिभाषा

आचार्य चरकानुसार–

अपस्मारं पुनः स्मृतिबुद्धिसत्वसंप्लवाद्।
बीषग्विभत्सचेष्टामवस्थिकं तमः प्रवेशमाचक्षते।।

स्मृति, बुद्धि एवं मन के विभ्रम, वीभत्स चेष्टा युक्त अंधकार में डूबते हुए की तरह ज्ञानशून्य होने की अवस्था को अपस्मार करते हैं।

अपस्मार के सामान्य निदान-संप्राप्ति-स्वरूप

माधव के अनुसार

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्त्रोतसि स्थिताः।
कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते॥
तमः प्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकतस्मृतेः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः॥

चिन्ता, शोकादि कारणों से दोष प्रकुपित होकर हृदय के मनोवाहि स्त्रोतस में स्थित होकर स्मृति का विनाश कर अपस्मार को उत्पन्न करते है। दोषों के उद्रेक से बुद्धि या स्मृति का लोप होकर तमः प्रवेश (आँखों के आगे अंधेरा छाना), विभिन्न विकृत शारीरिक चेष्टाएँ आदि करते हुए चार प्रकार के अपस्मार को उत्पन्न करता है।

आचार्य चरकानुसार

रज एवं तम से दूषित मनवाले, जिसमें दोष उन्मार्गगामी, विषम एवं बहुत हो, मलिन एवं द्रव्यों से युक्त एवं अपवित्र भोजन पदार्थों को विपरित रूप से खाने तथा तंत्र प्रयोगों का विपरित रिति से पालन करने, विषम शारीरिक चेष्टाओं को करने तथा अत्यंत क्षीण एवं दुर्बल व्यक्ति में प्रकुपित दोष हृदय एवं इंद्रियों में जाकर अपस्मार को उत्पन्न करते हैं।

अपस्मार के पूर्वरूप

हृत्कंपः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता।
निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवत्यथ॥

(सु.उ. 61)

–हृदय में कंपन तथा शून्यता की प्रतीति
–स्वेदाधिक्य
–चिन्ता
–मूर्च्छा
मूढ़ता अर्थात संज्ञानाश

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

–निद्रानाश

ये अपस्मार के पूर्वरूप हैं।

अपसमार के भेद

अपस्मार के चार भेद है–

1. वातज अपस्मार
2. पित्तज अपस्मार
3. श्लेष्मिक अपस्मार
4. सान्निपातिक अपस्मार

अपस्मार के भेदानुसार लक्षण

वातज अपस्मार	पित्तज अपस्मार	श्लैष्मिक अपस्मार	सान्निपातिक अपस्मार
–रोगी दौरों से पूर्व वस्तुओं को रुक्ष अरुण एवं कृष्ण वर्ण का देखता है। –बेहोश होने पर शरीर में कंपन, दाँतों का किटकिटाना, मुख से फेनोद्गमन, साँस का जोर-जोर से लेना	–दौरे से पूर्व रोगी को सब वस्तुएँ पीत या रक्त दिखती है। –रोगी के शरीर, मुख, नेत्र एवं मुख से निकलने वाले झाग का वर्ण पीत होता है। –रोगी को तृषाधिक्य, अतिउष्मा की प्रतीति होती है तथा –संसार की सभी चीजें जलती हुई से प्रतीत होती है।	– रोगी के मुख नेत्र एवं मुख से निकलने वाले झाग का वर्ण श्वेत रहता है। – रोगी का शरीर शीत रोमांचित एवं गुरु रहता है। – सभी वस्तुओं को श्वेत ही देखता है। – दौरा देर से समाप्त होता है।	–तीनो दोषों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं।

अपस्मार की असाध्यता

– सन्निपातिक अपस्मार।
– दुर्बल रोगियों में होने वाला अपस्मार।
– पुराने अपस्मार।
– जिस रोगी को बार-आर आक्षेप आते हो।
– जो अत्यंत क्षीण हो।

- जिसकी भ्रकुटियाँ ऊपर चढ़ी हो।
- जिसकी आँखें विकृत हो।

अपस्मार का प्रकोप काल

अपस्मार के दौरे पड़ते है ये कभी बारह दिन, कभी पंद्रह दिन, कभी एक माह या अन्य किसी दूसरे निश्चित समय के पूर्व या पश्चात् संचित दोषों के प्रकुपित होने पर पड़ते है।

उन्माद

मन उन्मत्त या अनियंत्रित हो जब निष्प्रयोजन एवं उच्छृंखल प्रवृत्ति करने लगता है तब उसे उन्माद कहते है।

उन्माद की निरुक्ति

मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमागताः।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः॥

(सु.उ. 63)

प्रकुपित दोष जब उर्ध्वगामी हो जाते है तब मन में विभ्रम उत्पन्न करते है इस मानस रोग को उन्माद कहते हैं।

उन्माद के हेतु

विरुध्ददुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः॥

(च.चि. 14)

1. विरुद्ध भोजन करने।
2. दूषित भोजन करने।
3. अपवित्र भोजन करने।
4. देव, गुरु एवं ब्राह्मणों का अपमान करने।
5. भय, हर्ष आदि मनोभिघातक कारणों से।
6. विषम चेष्टाओं के करने से।

ये सभी उन्माद के उत्पादक हेतु है।

उन्माद की संप्राप्ति

तैरल्पसत्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य।
स्त्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः॥

(च.चि. 14)

दुर्बल मन वाले व्यक्ति के प्रकुपित दोष बुद्धि के निवास स्थान हृदय को

दूषित करके मनोवाहिस्त्रोतों में अधिष्ठित हो मनुष्य के चित्त को मोह युक्त कर देते हैं।

उन्माद के सामान्य लक्षण

धी विभ्रमः सत्व परिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च।
अवबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादं गदस्य लिङ्गम्॥

1. बुद्धि विभ्रम।
2. मन की चंचलता।
3. दृष्टि (नेत्रों) की चंचलता।
4. अधीरता।
5. असंबद्ध बोलना।
6. हृदय की शून्यता।

ये उन्माद के सामान्य लक्षण है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

उन्माद के भेदानुसार लक्षण

वातज उन्माद	पित्तज उन्माद	कफज उन्माद	सन्निपातज उन्माद	मनोभिघातज	विषजन्य
–बिना कारण हँसना, मुस्कुराना, नाचना, गाना, बोलना। –हाथ-पैर इधर-उधर फैंकना –अकारण रोना –शरीर का रुक्ष एवं अरुण वर्ण हो जाना। –भोजन के जीर्ण होने के बाद दौरा प्रबल होना।	–रोगी का असहनशील एवं क्रोधी होना। –वस्त्र उतार कर नग्न हो जाता है। –क्रुद्ध होकर लोगों को धमकाता है। –लोगों को मारने दौड़ता है। –उष्णता से पीड़ित रहता है। –छाया में बैठने एवं शीतल जल एवं भोजन की इच्छा करता जाता है।	–रोगी कम बोलता है। –शारीरिक अन्य चेष्टाएँ भी कम करता है। –क्षुधानाश। –स्त्री के साथ एकांत में बैठने की इच्छा। –अतिनिद्रा। –छर्दि (वमन)। –अतिलालास्त्राव। –भोजन करते ही वेग प्रबल हो जाता है नख, नत्रादि का वर्ण श्वेत हो जाता है।	–तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण मिलते हैं।	–धन, परिवार आदि के नाश या प्रिय की अप्राप्ति आदि शोकज कारणों या –चोर, राजा, शत्रु, हिंसक पशु आदि के भय से होता है। –विचित्र बातें करता है। –मन में छिपी हुई बातें कह देता है। –कभी गाता, कभी हँसता कभी रोता है।	– धतूरा, विष आदि के प्रभाव से – नेत्रों में लालिमा – बल (ओज) इंद्रिय शक्ति एवं कांति का क्षय – दीनता – चेहरे का वर्ण पीला पड़ जाना – मूर्च्छा।

उन्माद के भेद

उन्माद के छः भेद है–

1. वातज उन्माद।
2. पितज उन्माद।
3. कफज उन्माद।
4. सन्निपातिज उन्माद।
5. शोकादिमानसिक कारण जन्य उन्माद।
6. विषजन्यउन्माद।

उन्माद की असाध्यता

1. जिसका बल एवं मांस क्षीण हो गया हो।
2. जिसका मुख सदा नीचे या उपर की ओर रहता हो।
3. जो हमेशा जागरुक हो (नींद न आए)।

ऐसे रोगी शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त उन्माद के अलावा आगन्तुज उन्माद भी होता है जिसे भूतोन्माद कहते हैं।

भूतोन्माद के सामान्य लक्षण

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञाना दिविज्ञानबलादिभिर्यः।
उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेस्तम्॥

(च.चि. 9)

1. ऐसे रोगी की वाणी, पराक्रम, वीर्य (शक्ति)एवं चेष्टाएँ सामान्य मनुष्य से अधिक एवं विचित्र होती है।
2. ऐसे रोगियों में ज्ञान, विज्ञान, बल आदि भी अधिक होता है। (अमानवीय)
3. दोषज उन्मादों की भाँति काल निश्चित ना हो।

ये सात प्रकार के होते हैं–

1. देवोन्माद।
2. दानवोन्माद (देवशत्रु)।
3. गंधर्वोन्माद।

4. यक्षोन्माद।
5. पित्रोन्माद।
6. सर्पोन्माद।
7. राक्षसग्रहजन्य उन्माद।
8. पिशाचग्रहजन्य उन्माद।

भेदानुसान लक्षण

1. देवोन्माद

1. ऐसा रोगी सदा संतुष्ट एवं पवित्र रहता है।
2. उसके शरीर से अकारण सुगंध आती रहती है।
3. निद्रा या तंद्रा नहीं आती।
4. सत्यभाषी एवं संस्कृत में धाराप्रवाह बोलता है।
5. रोगी तेजस्वी, नेत्र भी स्थिर होते हैं।
6. लोगों को आशीर्वाद देता है।
7. ब्राह्मणों की पूजा करता है।

2. देवशत्रु या दानवोन्माद

1. ऐसे रोगी को स्वेदाधिक्य।
2. ब्राह्मण, गुरु तथा देवताओं के दोषों का वर्णन करता है।
3. नेत्र टेढ़े हो जाते हैं।
4. किसी से नहीं डरता।
5. कुमार्ग पर चलने की प्रवृत्ति।
6. अधिक खाने पर भी तृप्ति नहीं होती।
7. दुष्ट प्रकृति का होता है।

3. गंधर्वग्रह पीड़ित उन्माद

1. ऐसा रोगी नित्य प्रसन्न रहता है।
2. नदी किनारे या बगीचे में घूमने में आनंद का अनुभव करता है।
3. आचरण शुद्ध होता है।
4. संगीत तथा गंधमालाओं से प्रीति।

5. सुंदर ढंग से नृत्य करता।
6. मंद-मंद मुस्कुराता।
7. कम बोलता है।

4. यक्षाविष्ट/यक्षोन्माद

1. नेत्र ताम्र वर्ण (लाल)।
2. सुंदर, पतले, रक्तवर्ण के वस्त्र धारण करता है।
3. गंभीर, शीघ्रगामी।
4. सहनशील।
5. तेजस्वी।
6. 'किसको क्या दूँ' ऐसा कहने वाला।

5. पितृजुष्ट/पित्रोन्माद

1. ऐसा रोगी शांत रहता है।
2. दक्षिण कंधे पर वस्त्रादि डालकर, कुशादि के बने आसन पर पितरों की शांति के लिए पिंडदान, जलदान करता है।
3. मांस, तिल, गुड़ एवं खीर जैसे पदार्थों में रुचि रहती है।
4. पितरों का भक्त रहता है।

6. सर्पग्रहजन्य/सर्पोन्माद

1. सर्प की तरह भूमि पर लेटकर पेट के बल सरकता है।
2. जीभ से होठों को चाटता है।
3. अत्यंत क्रोधी।
4. गुड़, शहद, दूध एवं खीर खाने की इच्छा रखता है।

7. राक्षसग्रहजन्य उन्माद

1. ऐसा रोगी मांस, रक्त एवं विविध प्रकार के मद्यों का सेवन करना चाहता है।
2. वह निर्लज्ज, अति निष्ठुर, अतिशूर होता है।
3. उसमें अत्यंत क्रोध एवं शक्ति होती है।
4. रात में घूमता है।
5. पवित्रता से द्वेष करता है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

8. पिशाचग्रहजन्य उन्माद

1. ऐसा रोगी भुजाएँ उपर उठाए रहता है।
2. कृश हो, शरीर रुक्ष हो।
3. रुक-रुककर प्रलाप करता हो।
4. शरीर से दुर्गंध आती हो।
5. गंदा रहता हो।
6. अत्यंत लोभी हो।
7. अत्यधिक भोजन करता हो।
8. निर्जन वनों में घूमता हो।
9. विरुद्ध चेष्टाएँ करता हो।
10. रोता हुआ इधर-उधर घूमता है।

उन्माद की असाध्यता

1. जिसकी आँखें बाहर निकली हो या दृष्टि विस्फरित हो।
2. जल्दी-जल्दी चलता हो।
3. मुख से निकलते हुए लालास्त्राव को चाटता हो।
4. निद्राधिक्य।
5. अचानक गिर पड़ता हो या काँपता हो।
6. जो पर्वत, हाथी या वृक्ष से गिरकर पागल हुआ हो।
7. तेरह वर्ष पुराना।

ग्रहावेश का कारण

ग्रहों का रोगी के शरीर में प्रवेश तीन कारणों से होता है–

1. हिंसा की कामना से।
2. रति की कामना से।
3. पूजा की कामना से।

ग्रहों का आक्रमण काल

विभिन्न ग्रहों का व्यक्ति के शरीर में विभिन्न आक्रमण काल होता है–

1. देवग्रह–पूर्णिमा
2. असूरग्रह–प्रातः या सायं

3. गंधर्वग्रह–अष्टमी
4. यक्षग्रह–प्रतिपदा
5. पितृग्रह–अमावस्या
6. सर्पग्रह–पंचमी
7. राक्षसग्रह–रात्रि
8. पिशाचग्रह–चतुर्दशी

अतत्वाभिनिवेश

इस व्याधि का केवल चरक ने वर्णन किया है। इसमें रोगी हठी या दुराग्रही हो जाता है। नित्यानित्य या हिताहित समझ नहीं पाता।

अतत्व–अयथार्थ, अवास्तविक, असत्य।

अभिनिवेश–गति, पैंठ, लीनता।

अर्थात् असत्य का अभिनिवेश या पैठन। रोगी नित्य को अनित्य एवं अनित्य को नित्य समझता है, सत् को असत् एवं असत् को सत् तथा हित को अहित एवं अहित को हित समझता है।

"विषमा कुरुते बुद्धिं नित्यानित्ये हिताहिते।
अतत्वाभिनिवेशं तं आहुराप्ता महागदम॥"

(च.)

इसे ही महागद भी कहा गया है।

अतत्वाभिनिवेश की निदान-संप्राप्ति

मलिन या दूषित आहार सेवन से, वेग विधारण करने, शीत-उष्ण-स्निग्ध आदि के अतियोग से दोष (शारीरिक एवं मानसिक) प्रकुपित होकर हृदय एवं मनोवह स्त्रोतों को दूषित करके बुद्धि-विभ्रम उत्पन्न कर अतत्वाभिनिवेश-रोग को उत्पन्न करते हैं।

अनिद्रा

नींद का न आना अनिद्रा या निद्रानाश है।

अनिद्रा के हेतु

निद्रानाशोऽनिलात् पित्तान्मनस्तापात् क्षयादपि।
संभवत्यभिघाताच्च प्रत्यनीकैः प्रशाम्यति॥

(सु.शा. 4/42)

आचार्य सुश्रुतानुसार

1. वातप्रकोप
2. पित्तप्रकोप
3. मनस्ताप
4. धातुक्षय एवं
5. अभिघात

ये अनिद्रा के हेतु है।

आचार्य चरकानुसार

1. कायविरेचन
2. उपवास
3. वमन
4. भय
5. चिंता
6. क्रोध
7. धूम
8. व्यायाम
9. रक्तमोक्षण
10. असुखशय्या
11. सत्वगुण की वृद्धि
12. तमोगुण का नाश
13. अतिरिक्त कार्य, काल, विकार प्रवृत्ति (च.सू. 21/55-57)
14. वातप्रकोप

ये निद्रानाश के कारण है।

अनिद्रा के लक्षण

1. अंगमर्द
2. शिरोगौरव

3. जृम्भा
4. गुरुता
5. ग्लानी
6. भ्रम
7. अपाक
8. तंद्रा
9. वातजन्य दोष (अ.ह.सू. 7/64)

ये लक्षण है।

अतिनिद्रा

नींद का बहुत आना या अतियोग अतिनिद्रा कहलाता है।

हेतु

निद्राश्लेष्मतमोभवा।

(सु.शा. 4/55)

अतिनिद्रा का मुख्य हेतु कफ एवं तमोगुण है। कफवृद्धि एवं तमोगुण का बढ़ना अतिनिद्रा जनक है।

संप्राप्ति

कफवृद्धि से पाचकाग्नि मंद हो जाती है जिससे आहार रस का ठीक से परिपाक नहीं हो पाता तथा आहाररस रसवाहि स्त्रोतों को अवरुद्ध कर देता है जिससे शरीर में शिथिलता आ जाती है। शिथिलता से आलस्य एवं आलस्य से निद्रा आती है।

अतिनिद्रा के परिणाम

अतिनिद्रा से हलीमक, स्तैमित्य, गुरुगात्रता, अंगमर्द, अग्निनाश, हृदयोपलेप–शोथ, अरोचक, हल्लास, पीनस, अर्धावभेदक, कोठ, अरुंषिका, कंडू, तंद्रा, कास, गलरोग, स्मृति एवं बुद्धि का संमोह, स्रोतोरोध, ज्वर, इंद्रियों की अक्षमता, विषवेग की वृद्धि आदि उत्पन्न होते है।

(च.सू.24/46-49)

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

विषाद

मन का अवसाद, मन की खिन्नता विषाद कहलाती है। रोगी निराश रहता है। यह कफवृद्धि तथा तमो जन्य होता है।

तन्द्रा

हृदयेत्याकुलीभावो वाक् चेष्टेन्द्रियगौरवम्।
मनोबुद्धयप्रसादश्च तन्द्राया लक्षणं मतम्॥

(च.सि. 9/23)

इसका अर्थ है आलस्य, थकावट, क्लांति, शौथिल्य आदि। रोगी जागृत अवस्था में भी सोए की भाँति आचरण करता है।।

निदान-संप्राप्ति

आचार्य चरकानुसार मधुर, स्निग्ध एवं गुरु अन के सेवन, अतिचिंतन, परिश्रम, शोक से, व्याधि द्वारा बहुत समय तक पीड़ित रहने से प्रकुपित वायु द्वारा प्रवृद्ध कफ जब हृदय में पहुँचकर हृदयाश्रित, ज्ञानादि को आवृत्त करता है तब तंद्रा उत्पन्न होती है।

लक्षण

1. हृदय में व्याकुलता।
2. वाक् गौरव।
3. चेष्टागौरव।
4. इंद्रियगौरव।
5. मन की अप्रसन्नता।
6. बुद्धि की अप्रसन्नता।

तमोवातकफात्तन्द्रा।

(सु.शा. 4/56)

तमोगुण, वात एवं कफ से तंद्रा उत्पन्न होती है।

मद-मूर्च्छा-सन्यास

मानसिक रोगों में मोह, संज्ञानाश या बेहोशी का लक्षण समान्यतः पाया जाता है तथा प्रत्यात्म लक्षण के रूप में होता है।

बेहोशी या संज्ञानाश की तीव्रता मद की अपेक्षा मूर्च्छा में, मूर्च्छा की अपेक्षा संन्यास में अधिक होती है। हालाँकि ये मानसिक रोग है तथा मानसिक दोषों की अधिकता से होते है किंतु विभिन्न शारीरिक रोगों में ये उपद्रवस्वरूप उत्पन्न होते है। जैसे पांडु, ज्वर, विसूचिका, ज्वर आदि रोगों की गंभीरतम अवस्थाओं में ये उपद्रव रूप में मिलते हैं।

तीनों के सामान्य निदान संप्राप्ति

यदा तु रक्तवाहीनि रससंज्ञावहानि च।
पृथक् पृथक् समस्ता वा स्त्रोतांसि कुपिताः मलाः॥
मलिनाहार शीलस्य रसोमोहावृतात्मनः।
प्रतिहत्यावतिष्ठन्ते जायन्ते व्याधयस्तदा॥
मदमूर्च्छासन्यासास्तेषां विद्याद्विचक्षणः।
यथोत्तरं बलाधिक्यं हेतुर्लिगोपशांतिषु॥

(च.सू.)

मलिनाहार, अशुद्ध आचार-विचार (शील) आदि से प्रवृद्ध दोष जब रक्तवाही एवं रसवाही एवं संज्ञावाही स्त्रोतसों एवं उनके मूल हृदय में जाकर रज एवं तम द्वारा मन को आवृत्त कर देते है, तब मन अपना कार्य नहीं कर पाता जिससे मद, मूर्च्छा एवं संन्यास की अवस्था उत्पन्न होती है जो उत्तरोत्तर बलवती अवस्थाएँ होती है। इन तीनों अवस्थाओं में संज्ञानाश सामान्य लक्षण होता है।

मद में संज्ञानाश या बेहोशी की तीव्रता कम होती है। इसके 4 भेद है–

1. वातज मद
2. पित्तज मद
3. कफज मद
4. सन्निपातिज मद

भेदानुसार लक्षण

वातज मद	पित्तज मद	कफज मद	सन्निपातिज मद
–वाणी की अस्पष्टता –लड़खड़ाना रुक्ष, –अरुण एवं श्याव वर्ण की आकृतियों का दिखना	– क्रोध की अधिकता – वाणी की कर्कशता – रक्त-पीत एवं कृष्ण वर्ण की आकृतियों का दिखना	– अल्प बोलना – असंबद्ध बोलना – आलस्य – पांडु वर्णता	– तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण

वाग्भट ने इनके अलावा–रक्तज, मद्यज एवं विषज ये तीन ऐसे कुल सात भेद मद के बताए है।

रक्तजमद–पित्तज मद के लक्षणों के साथ अंगों तथा दृष्टि का स्तब्ध रह जाना रक्तज मद का लक्षण है।

मद्यजमद–इसमें चेष्टाओं, स्वर एवं अंगों की विकृति होती है।

विषजमद–यह सभी मदों की अपेक्षा अधिक वेगवान होता है। कम्प एवं अतिनिद्रा ये लक्षण होते है।

मद का स्वरूप–मद्यपान से उत्पन्न होने वाले मद के सदृश होता है। यह शीघ्र ही उत्पन्न होने वाला एवं शीघ्र ही शांत होकर शीघ्र ही होश आ जाता है।

जायते शाम्यति क्षिप्रं मदो मद्यमदाकृति।

(च.सू. 24/33)

सुश्रुत ने उन्माद की प्रवृद्ध अवस्था को मद कहा है।

स चाप्रवृद्धदस्तरुणो मदसंज्ञा विभर्ति च।

(सु.उ. 62/5)

संप्राप्ति–स्वकारणों से प्रकुपित वायु जब दुर्बल चित्त के स्थान हृदय या मनोवाही स्त्रोतों में जाता है तब मन को विक्षुब्ध कर संज्ञा (ज्ञान) में संमोह उत्पन्न करता है। इसे मद कहते है।

मूर्च्छा–संज्ञानाश की वह अवस्था जिसमें व्यक्ति के सुख दुःख का ज्ञान पूर्णतः या अधिकांशतः नष्ट हो जाता है। व्यक्ति जब सूखे काष्ठ की तरह जमीन पर गिर पड़ता है तो उस अवस्था को मूर्च्छा कहते है।

पित्त एवं तम की अधिकता तथा शरीर एवं मन की सम्मिलित विकृति का परिणाम मूर्च्छा है।

मूर्च्छा की निदान-संप्राप्ति

1. जो व्यक्ति अत्यंत क्षीण हो।
2. जिसमें दोष प्रकोप अत्यधिक मात्रा में हो।
3. जो विरुद्धाहार का सेवन करने वाला हो।
4. मल-मूत्रादि के वेगों का धारण करने।
5. आघात लगने से
6. हीन सत्व वाला

ऐसे व्यक्तियों के मन या इंद्रियों के बाह्य या आभ्यांतर आयतनों में प्रकुपित दोष उग्र रूप से प्रवेश करके मूर्च्छा उत्पन्न करते है।

क्षीणस्य बहुदोषश्च विरुद्धाहारसेविनः।
वेगाघातादभीघाताध्दीनसत्वस्य वा पुनः॥

(सु.उ. 46/3)

मूर्च्छा के पूर्वरूप

हृत्पीड़ा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च।
सर्वासां पूर्वरुपाणि यथास्वं ता विभावयेत्॥

(सु.उ. 46)

1. हृदप्रदेश में पीड़ा।
2. जृम्भा की अधिकता।
3. ग्लानि।
4. ज्ञानशक्ति की दुर्बलता।

ये मूर्च्छा के पूर्वरूप है।

मूर्च्छा के भेद

षड्विधा सा प्रकीर्तिता॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च।
षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते॥

(सु.उ. 46)

मूर्च्छा के छः भेद है–

1. वातज

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

2. पित्तक
3. कफज
4. रक्तज
5. मद्यज एवं
6. विषज

इन सभी में पित्त की प्रधानता होती है।

आचार्य चरक एवं वाग्भट ने मूर्च्छा के 4 ही भेद किए है–

1. वातज
2. पित्तज
3. कफज
4. सन्निपातज

सन्निपातिक मूर्च्छा के लक्षण–तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं, इसका दौरा अपस्मार की ही भाँति होता है, वीभत्स चेष्टाओं को छोड़कर, रोगी शीघ्र ही बेहोश हो जाता है।

भेदानुसार मूर्च्छा के लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	रक्तज	मद्यज	विषज
– मूर्च्छाग्रस्त हाते समय रोगी आकाश को नीला, काला या लालरंग का देखता हुआ मूर्च्छित होता है। – शीघ्र होश में आ जाता है। – कंपन एवं अंगमर्द होता है। – हृदपीड़ा। – मुख का वर्ण श्याम या अरुण – शरीर कृश	– मूर्च्छित होते समय रोगी आकाश को रक्त, हरित या पीत वर्ण का देखता है – होश आते समय अत्यधिक स्वेद प्रवृत्ति – तृषाधिक्य – संताप – नेत्र रक्त या पीतवर्ण के – शीघ्र ही मूर्च्छित हो गिर पड़ता है एवं शीघ्र ही होश आ जाता है। – मलप्रवृत्ति अनियंत्रित – मुख का वर्ण पीत	– रोगी मूर्च्छित होते समय आकाश को मेघों से आच्छादित देखता है। – होश देर से आता है। – अंग आर्द्र वस्त्र या आर्द्र चर्म से आवृत्त प्रतीत होते है। – लाला प्रसेक – हल्लास	– रक्त की गंध से मूर्च्छा उत्पन्न होना या। – रक्त के दर्शन मात्र से मूर्च्छित होना। – अंग जकड़ जाते है। – नेत्र स्तब्ध – श्वास गहरा लेता है।	– प्रलाप करता है – संज्ञाहीन या विक्षिप्त चित्त होकर हाथ-पैर आदि फेंकता हुआ मुर्च्छित होकर भूमी पर तब तक पड़ा रहता है जब तक मद्य का परिपाक न हो।	– कम्पन, निद्रा, तृष्णा – तमः प्रवेश – विष के अनुसार तीव्र, तीव्रतर लक्षण मिलते है।

संन्यास

मूर्च्छा की गंभीरतम अवस्था संन्यास है। इसके कारण एवं लक्षण मूर्च्छा की अपेक्षा प्रबल होते है। दोषों की अत्यधिक वृद्धि के कारण सभी इंद्रियाँ, मन, शरीर, प्राणवाही स्त्रोतस आदि की क्रियाएँ लुप्त हो जाती है। व्यक्ति काष्ठीभूत एवं मृतोपम होकर भूमि पर गिर पड़ता है तथा शीघ्र चिकित्सा न की जाए तो शीघ्र ही मर जाता है। आचार्य सुश्रुत ने दोषों एवं तम की अधिकता के कारण संन्यास की स्थिति कही है।

"प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात् सम्मूर्च्छितो नैव विबुध्यते यः।
संन्याससंज्ञो भृशदुश्चिकित्स्यो ज्ञेयस्तदा बुद्धिमता मनुष्यः॥"

(सु.उ. 47/20-21)

आचार्य वाग्भट ने संन्यास के स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है–

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः।
संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः॥
स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः।
प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यः फलां क्रियाम्॥

(अ.ह.नि. 6)

अत्यधिक बढ़े हुए दोष दुर्बल मनुष्यों के जब प्राणायतनों में पहुँचकर वाणी, शरीर एवं मन की क्रियाओं को अवरुद्ध कर देते है तब रोगी अचेतन हो जाता है इस अवस्था को संन्यास कहते है। इसमें रोगी सूखे काष्ठ की तरह या मृत व्यक्ति की तरह प्रतीत होता है तथा यदि शीघ्र फल देने वाली चिकित्सा न कि जाए तो शीघ्र ही प्राण त्याग देता है।

मद, मूर्च्छा आदि की अवस्थाएँ दोषों का वेग समाप्त होने पर स्वयं समाप्त हो जाती है, किंतु संन्यास की अवस्था में चिकित्सा किए बिना लाभ नहीं होता।

आचार्य चकरानुसार शरीर एवं मन का आश्रय कर त्रिदोष से उत्पन्न होने वाला संन्यास एक ही प्रकार का होता है।

XIII. उपसर्गजन्य व्याधियाँ

रोमांतिका

आचार्य चरक एवं माधव ने अति संक्षेप में इस व्याधि का वर्णन किया है। आचार्य सुश्रुत ने इसका वर्णन नहीं किया। इस व्याधि में ज्वरपूर्वक संपूर्ण शरीर में छोटी-छोटी पिड़काएँ निकलती है, ये पिडकाएँ रोमकूपों पर निकलती है, अतः रोमांतिका कहलाती है।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः।
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः॥

(माधव)

रोमकूपों के उभारों के सदृश जो लाल वर्ण की पिड़िकाएँ कफ एवं पित्त के कारण रोमांतों में उत्पन्न होती है, उसे रोमांतिका कहते है। यह ज्वरपूर्वक होती है तथा कास एवं अरोचक ये लक्षण भी साथ होते है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

मसूरिका

मसूर के आकार की पिडिकाओं का संपूर्ण शरीर में उत्पन्न होना मसूरिका कहलाता है। आचार्य चरक ने शोथ प्रकरण के अंतर्गत इसका वर्णन किया है तथा पित्त एवं कफ प्रकोपजन्य माना है।

आचार्य सुश्रुत ने क्षुद्ररोगों के अंतर्गत इसका वर्णन किया है–

दाहज्वररुजावन्तस्तीव्राः स्फोटाः सपीतकाः।
गात्रेषु वदने चान्तर्विज्ञेयास्ता मसूरिकाः॥

संपूर्ण शरीर एवं चेहरे पर पीत वर्ण के तीव्र (भयंकर) स्फोटों (पिड़काओं) की उत्पत्ति मसूरिका कहलाती है। तथा साथ में दाह, ज्वर एवं वेदना भी रहती है।

उपरोक्त वर्णनों से स्पष्ट है की चरक एवं सुश्रुत के काल में ये व्याधि सौम्य स्वरूप की होती थी। किंतु अब इसका भयंकर स्वरूप मिलता है।

सर्वप्रथम माधव ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। माधवकाल में इसकी तीव्रता भी बढ़ती प्रतीत होती है।

मसूरिका के निदान

1. कटु, अम्ल, लवण, क्षार द्रव्यों का सेवन
2. विरुद्धाशन
3. अध्यशन
4. दूषित अन्न का सेवन
5. मटर, शाक आदि का सेवन
6. दूषित जल के सेवन से
7. दूषित वायु के सेवन से
8. क्रूर ग्रहों के कोप से

संप्राप्ति–उपरोक्त कारणों से दोष प्रकुपित होकर दूषित रक्त के साथ मिलकर मसूर के आकृति के सदृश संपूर्ण शरीर में पिड़काओं को उत्पन्न करते है उन्हें मसूरिका कहते है।

पूर्वरूप–

तासां पूर्व ज्वरः कंडूर्गात्र भङ्गोऽरतिर्भ्रमः।
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररोगश्च जायते।

1. ज्वर 2. कंडु 3. अंगों का टूटना 4. काम में मन ना लगना (अरति) 5. भ्रम 6. त्वचा में शोथ 7. विवर्णता 8. नेत्रों में लालिमा ये पूर्वरूप होते है।

मसूरिका के भेद

मसूरिका के 5 भेद बताएँ है–

1. वातज मसूरिका
2. पित्तज मसूरिका
3. कफज मसूरिका
4. रक्तज मसूरिका
5. सन्निपातज मसूरिका

भेदानुसार मसूरिका के लक्षण

भेद	लक्षण
1. वातज मसूरिका	– स्फोट श्याव या अरुण वर्ण के। – रुक्ष, तीव्र वेदनायुक्त। – कठिन, चीर पाकी। – संधि, अस्थि एवं पर्वों में वेदना। – कास। – कंपन। – अरति। – क्लम। – तालु, ओष्ठ एवं जिव्हां का सूखना। – तृष्णा। – अरुचि।
2. पित्तज मसूरिका	– स्फोट रक्त, पीत या श्वेत वर्ण के। – दाह युक्त एवं तीव्रवेदनायुक्त। – शीघ्र पकने वाले। – अतिसार। – अंगमर्द – दाह, तृष्णा। – अरुचि। – मुखपाक। – नेत्रों में लालिमा।

	– ज्वर तीव्र एवं भयंकर स्वरूप का।
3. रक्तज मसूरिका	– पित्तज मसूरिका के सदृश ही लक्षण होते है।
4. कफज मसूरिका	– कफप्रसेक, स्तैमित्य, शिर में वेदना, शरीर में भारीपन, हृल्लास, अरुचि, निद्रा, तंद्रा। – स्फोट श्वेत वर्ण के स्निग्ध, स्थूल, कण्डू एवं मंद वेदना युक्त तथा देर से पकने वाले होते है।
5. सान्निपातज मसूरिका	– स्फोट नील वर्ण के, चपटे, विस्तृत, मध्य में दबे हुए भयंकर वेदना युक्त होते है। – चिरपाकी, दुर्गंधित स्त्राव वाले, अत्यधिक मात्रा में। – कंठ में अवरोध, अरुचि, स्तंभन, प्रलाप, अरति, युक्त। – ये कष्टसाध्य होते है। – इन्हें चर्मदल भी कहते है।

धातुगत मसूरिका के लक्षण

मसूरिका के सप्तधातुगत लक्षणों के आधार पर भी भेद किए गए है–

भेद	लक्षण
1. रसगत (त्वक्गत) मसूरिका	– पिड़िका जल से भरे बुलबुले जैसी होती है दोषों का प्रकोप अल्प होता है तथा विदीर्ण होने पर जलीयस्त्राव निकलता है।
2. रक्तगत मसूरिका	– रक्तवर्ण की, शीघ्रपाकी, पतली त्वचा वाली। – दोष प्रकोप अधिक ना हो तो साध्य। – विदीर्ण होने पर रक्तयुक्त स्त्राव निकलता है।
3. मांसगत मसूरिका	– पिड़िका स्निग्ध, कठोर, चिरपाकी। – इसके ऊपर की त्वचा मोटी होती है। – संपूर्ण शरीर में शूल, तृष्णा, कंडू, ज्वर अरति।
4. मेदोगत मसूरिका	– मंडलाकार (गोल), मृदु, कुछ उभरी हुई। – भयंकर ज्वर युक्त, स्थूल, स्निग्ध, वेदनायुक्त। – रोगी मूर्च्छा, अरति एवं संताप से ग्रस्त रहता है। – असाध्य।
5. अस्थिगत मसूरिका	– भ्रमरों के द्वारा विद्ध हुए की तरह अस्थियाँ। – पाकयुक्त, स्निग्ध, सूक्ष्म एवं अत्यंत वेदना युक्त पिड़िकाएँ।
6. मज्जागत मसूरिका	– संमोह, वेदना, अरति युक्त।
	– मर्मस्थानों को छेदति हुयी सी, प्राणों का हरण करती है।

7. शुक्रगत मसूरिका	– स्तैमित्य, अरति, संमोह, उन्माद युक्त। – पाकयुक्त, स्निग्ध, सूक्ष्म एवं अत्यधिक वेदनायुक्त। – असाध्य।

साध्यासाध्यता

–रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज एवं कफपित्तज मसूरिका सुखसाध्य।

–वातज, वातपित्तज, कफपित्तज, मसूरिका कृच्छ्रसाध्य।

–सन्निपातिक मसूरिका असाध्य।

–प्रवालसदृश, जामुन सदृश, लोहजाल सदृश, अलसीफल सृदृश तथा दोषानुसार विविध वर्णों वाली मसूरिकाएँ भी असाध्य होती है।

मसूरिका के अरिष्ट लक्षण

मसूरिका ग्रस्त रोगी को निम्न लक्षण उत्पन्न हों तो उसे असाध्य समझकर चिकित्सा न करे–

–कास, हिक्का, प्रमेह, तीव्रज्वर, प्रलाप, अरति, मूर्च्छा, तृष्णा, दाह, अत्यधिक ऐंठन।

–मुख, नासिका एवं नेत्रों से रक्तस्त्राव।

–कण्ठ में घुर्घराहट।

–श्वासकष्ट।

मसूरिका के निश्चित मृत्यु सूचक लक्षण

–जो रोगी नासिका से अत्यधिक श्वास लेता हो।

–जिसे अत्यधिक तृषाधिक्य हो।

–जिसकी वायु अत्यंत दूषित हो।

मसूरिका के उपद्रव

मसूरिकान्ते शोथः स्यात् कूर्परे मणिबन्धके।
तथांऽसफलके चापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः॥

मसूरिका के अंत में कूर्पर, मणिबंध एवं अंसफलक में भयंकर शोथ उत्पन्न हो जाता है जो दुश्चिकित्स्य होता है।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

उपदंश

यह दूषित योनि के संसर्ग से होने वाला मैथुनजन्य विकार है। इसका वर्णन आचार्य चरक ने "ध्वजभंग" नाम से किया है, तथा सुश्रुत एवं माधव निदान में उपदंश नाम से विस्तृत वर्णन मिलता है।

यह स्त्री एवं पुरुष में समानरूप से एक दूसरे के संसर्ग से होता है, तथा दारुण है।

"स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते उपदंशाश्च दारुणाः।"

उपदंश के निदान

हस्ताभिघातान्नखदन्तपातादधावताद्रत्यतिसेवनाद्वा।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्नेपञ्चोपदंशा विविधापचारैः॥

1. हस्त द्वारा शिश्न मर्दन से।
2. नख या दंत के लगने से।
3. शिश्न को ठीक से स्वच्छ न रखने से (अधावन)
4. मैथुन के अतिसेवन से।
5. दूषित योनि के संसर्ग से।
6. विविध प्रकार के अपचार या कुपथ्य करने से पाँच प्रकार के उपदंश होते हैं।

उपदंश के निदानों को मुख्य 3 कारणों में विभक्त किया जा सकता है–

1. मैथुनजन्यकारण–जैसे रजस्वला स्त्री के साथ मैथुन करने, दीर्घरोमा या कर्कशरोमा स्त्री के साथ मैथुन करने अशुद्धयोनि या योनिरोग से पीड़ित स्त्री के साथ मैथुन करने से उपदंश होता है।

2. क्षतजन्यकारण–नख, दंत, शूक (लिंगवर्धक योग) बंधन आदि द्वारा शिश्न में क्षत होने से।

3. वेगविधारण–शुक्र एवं मूत्र का वेग धारण करने से।

संप्राप्ति

उपरोक्त कारणों से प्रकुपित दोष क्षत या अक्षत शिश्न में शोभ उत्पन्न करके उपदंश को उत्पन्न करते है।

उपदंश के भेद

1. वातज 2. पित्तज 3. रक्तज 4. कफज 5. त्रिदोषज

दोषानुसार लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	रक्तज	त्रिदोषज
तोद भेद स्फुरण स्फोट कृष्ण वर्ण के	क्लेद दाह स्फोट पीत वर्ण के	कंडु शोथ स्फोट बड़े श्वेत वर्ण के, घनस्त्राव करने वाले	मांस सदृश या कृष्णवर्ण के तथा रक्तस्त्राव करने वाले स्फोट युक्त याप्य	विविध प्रकार के स्त्राव एवं वेदनाएँ, असाध्य, कालांतर में कृमि उत्पत्ति

असाध्यता–विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धंमुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च॥

जिसके शिश्न का मांस गलकर गिरने लगे, कृमियों द्वारा खाया गया हो जिसमें केवल अंडकोष ही शेष बचे हो। समय रहते चिकित्सा न करने पर शिश्न शोथ, कृमि दाह एवं पाकयुक्त होकर नष्ट होकर गिर जाता है तथा रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

लिंगार्श या लिंगवर्ति–अंकुरों के समान, एक दूसरों के ऊपर स्थित मांसप्रवर्धनों से जो कोष के अंदर शिश्नमणि के छिद्र के पास या संपूर्ण छिद्र पर मुर्गे की चोटी के समान वर्तिसी उत्पन्न होती है। उसे लिंगार्श या लिंगवर्ति कहते हैं, इसमें वेदना एवं पिच्छिलता होती है। यह कृच्छ्रसाध्य होता है।

फिरंग

भावप्रकाश में इसका वर्णन मिलता है। माधव निदान परिशिष्ट में उपदंश के साथ इसका अल्प वर्णन प्राप्त होता है।

फिरंगियों (पोर्तुगीज) को अधिकांश होता है तथा उनके साथ सहवास से भारत में इस रोग का प्रवेश हुआ अतः मूलतः फिरंगियों को होने के कारण इस रतिज रोग का नाम फिरंग रखा गया।

फिरङ्गसंज्ञके देशेबाहुल्येनैव यद्भवेत्।
तस्मात् फिरङ्गइत्युक्तोव्याधिर्व्याधि विशारदैः॥
गन्धरोगः फिरङ्गेऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्।
फिरङ्गिणोऽङ्गसंस्पर्शत फिरङ्गिष्या प्रसङ्गतः॥

(भा.प्र. 1)

यह एक दीर्घकालीन औपसर्गिक रतिज रोग है तथा संक्रमित माता से शिशु में भी होता है अतः सहज या जन्मजात भी पाया जाता है। यह जीवाणुजन्य है तथा इस रोग से पीड़ित स्त्री या पुरुष के साथ मैथुन से स्वस्थ स्त्री या पुरुष में इसका संक्रमण होता है।

इसे तीन प्रकार का बताया गया है–

फिरङ्गरोगस्त्रिविधो भिषग्भिः प्रोक्तस्तु तत्रादिम एव बाह्यः।
आभ्यान्तरः स्यादपि च द्वितीयो बाह्यन्विताभ्यन्तरसंज्ञकोऽन्त्यः।

1. बाह्य फिरंग
2. आभ्यांतर फिरंग
3. बाह्याभ्यंतर फिरंग

लक्षण

लिङ्गानि चैषामथ संब्रवीमि क्रमेण कृत्स्नं कथितानि वैद्यैः।
बाह्यः फिरङ्गो गदितस्तु तत्र विस्फोटतुल्योऽल्परुजाऽन्वित श्चं
प्रदृश्यते च स्फुरितो भिषग्भिः प्रायेण लोके व्रणवत् सुसाध्यः।
आभ्यन्तरो यः स इहामवातोपमव्यथां सन्धिषु चापि नूनम्।
शोथं विशेषाज्जनये-ततोऽसौ ख्यातो भिषग्भिर्ननुकष्टसाध्यः॥

1. बाह्य फिरंग–विस्फोट (फोड़े) के समान, अल्प वेदना युक्त तथा व्रण के समान फूटने वाला एवं सुसाध्य होता है।
2. आभ्यान्तर फिरंग–इसमें आमवात के समान लक्षण होते हैं। संधियों में वेदना एवं शोथ की विशेषता रहती है यह कष्टसाध्य होता है।
3. बाह्याभ्यंतर–बाह्य एवं आभ्यांतर दोनों के लक्षण मिलते हैं।

फिरंग के उपद्रव

नासाभङ्गो वह्निमान्द्यं च कार्श्यं शोषश्चास्थ्नां वक्रता वा फिरङ्गे।
तूपद्रुत्यो भाषिता वै बलस्य क्षीणत्वं चैताइहायुर्विदग्रयैः॥

1. नासाभंग
2. अग्निमांद्य
3. कार्श्य (कृशता)
4. शोष
5. अस्थिवक्रता।
6. बलक्षय

साध्यासाध्यता

साध्य–बाह्य फिरंग, नवीन एवं उपद्रवरहित

कष्टसाध्य–आभ्यांतर फिरंग

असाध्य–क्षीण मनुष्य में होने वाला, सर्वत्र व्याप्त तथा बाह्य आभ्यांतर फिरंग असाध्य।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

कृमि रोग

परिभाषा, भेद एवं लक्षण

कृमि (रोगोत्पादक जिवाणुओं) के विषय में आयुर्वेद में विस्तृत वर्णन उपलब्ध हैं। आचार्य चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि के ग्रंथों में कई प्रकार के दृष्ट एवं अदृष्ट कृमियों का वर्णन प्राप्त होता है। न केवल आयुर्वेद बल्कि वेदों (अथर्ववेद) में भी कृमियों का वर्णन मिलता है, तथा मनुष्य एवं पशुओं में कृमि से विभिन्न रोंगों की उत्पत्ति बताई गई है। जिस तरह से आधुनिक चिकित्सा शास्त्र संक्रमण जन्य व्याधियों में जिवाणुओं की कारणता मानते हैं। उसी तरह आयुर्वेद में भी औपसर्गिक रोगों में जीवाणुओं द्वारा संक्रमण को स्वीकार किया गया है, अन्तर केवल इतना है कि आयुर्वेद निदान एवं व्याधिक्षमत्व (रोगी बल) को विशेष महत्त्व देता है। आयुर्वेदाचार्यों को न केवल सहज (अवैकारिक) कृमियों का ज्ञान था बल्कि अदृष्ट (Microscopic) कृमि का भी ज्ञान था।

कुष्ठ, ज्वर, प्रतिश्याय, यक्ष्मा नेत्राभिष्यंद रोगों को औपसर्गिक माना गया है।

आयुर्वेद एवं आधुनिक चिकित्सा शास्त्र दोनों ही दो प्रकार के कृमि मानते हैं-

1. सहज या अवैकारिक (Non pathogenic)
2. वैकारिक (Pathogenic)

कृमि शब्द की उत्पत्ति 'कृ' धातु से होती है, इसका अर्थ होता घातक या हानिकारक प्रभाव डालना या मारना इनकी उपस्थिति से शरीर पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अतः उसे कृमि कहा गया है।

सहज या अवैकारिक कृमि-प्राकृत रूप से शरीर या वातावरण में पाये जाते हैं, ये शरीर को किसी भी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाते तथा रोगोत्पत्ति नहीं करते, बल्कि शरीरधारक होते हैं।

वैकारिक कृमि- ये रोगोत्पादक होतें हैं तथा इनका ज्ञान आवश्यक है।

आयुर्वेदीय ग्रंथों में इनकी संख्या बीस बताई है।

आश्रय भेद से इन्हें दो वर्गों में बाँटा गया है-

1. बाह्य कृमि
2. आभ्यांतर कृमि

तथा कारण भेद से इनके चार प्रकार बताए गए हैं।

1. बहिर्मलज कृमि
2. रक्तज कृमि
3. श्लेष्मज या कफज कृमि
4. पुरीषज कृमि

1. बाहय कृमि ही बहिर्मलज कृमि है, इनकी संख्या 2 है।

1. युका (जूँ)
2. पिपीलिका (लिख/लिक्षा)

2. आभ्यांतर कृमि के अन्तर्गत रक्तज, श्लेष्मज एवं पुरीषज कृमि आते हैं। जिसमें रक्तज कृमि की संख्या छः, श्लेष्मज की संख्या सात एवं पुरिषज कृमि की संख्या पाँच है।

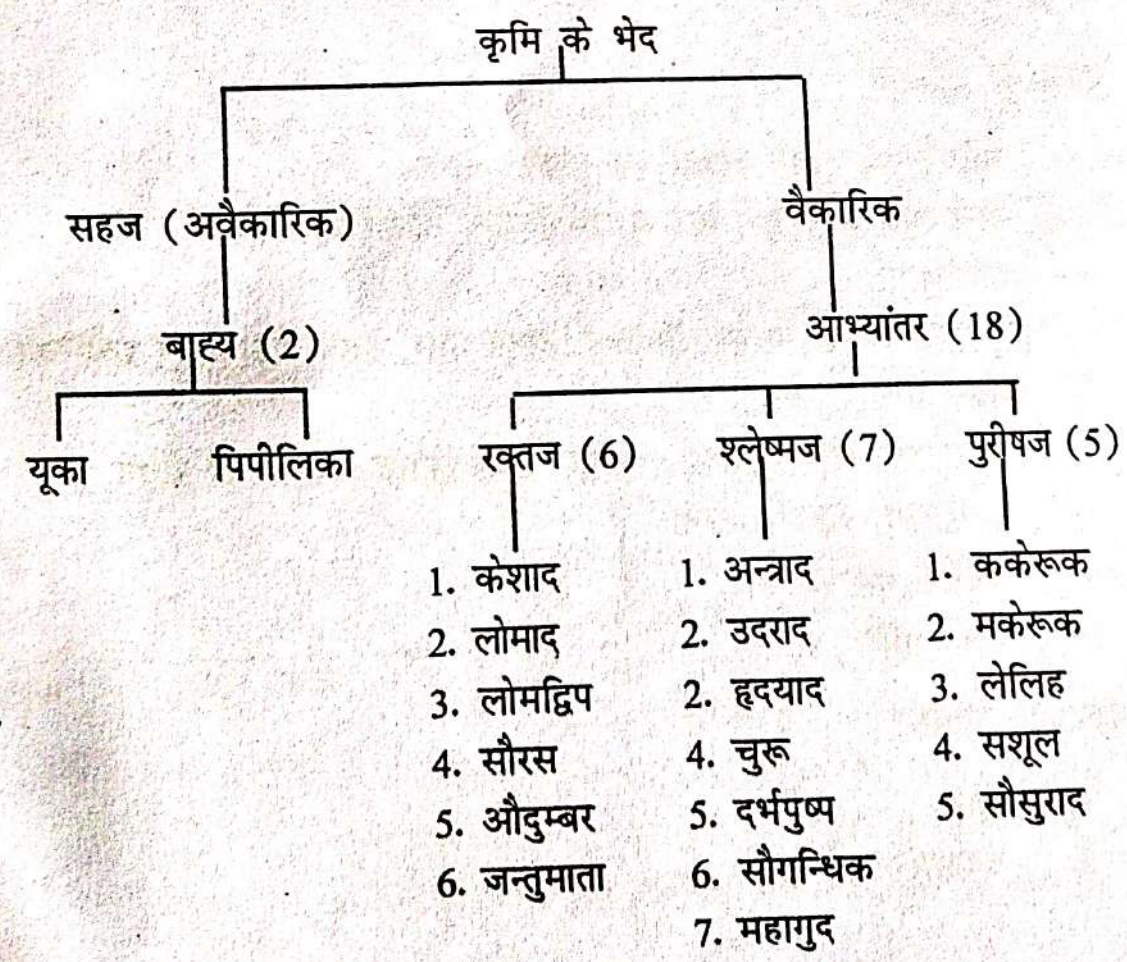

बाह्य कृमि

यह बहिर्मलज कृमि है। इनकी संख्या दो है। ये दो तरह कें होते हैं।

1. यूका (जूँ)- यह कृष्ण वर्ण की होती है।
2. पिपीलिका (लीख)- यह श्वेत वर्ण की होती है।

निदान- स्नान आदि द्वारा शरीर की स्वच्छता न रखने तथा वस्त्रादि की स्वच्छता न रखने से।

स्थान-मुख्यतः केश-सिर के बालों तथा दाढ़ी, मूँछ एवं रोमों के बाल।

आकृति- तिल के समान एवं अनेक पैरों वाले।

वर्ण- यूका कृष्ण वर्ण तथा पीपिलिका श्वेत वर्ण वाले।

विकार- इनके कारण सिर में कण्डू, फुन्सियाँ एवं चकत्ते हो जाते हैं।

आभ्यांतर कृमि

यह तीन प्रकार के होते हैं-

1. रक्तज
2. श्लेष्मज
3. पुरीषज

सामान्य कारण

- मलिन एवं दूषित आहार का सेवन
- अध्यशन, असात्म्य, विरूद्ध एवं विकृत आहार का सेवन
- अजीर्ण
- गुड, दूध, तिल, मत्स्य, पिष्टान्न, अनूप मांस, उड़द, दही आदि द्रव्यों का सेवन
- मधुर तथा अम्ल पदार्थो एवं गुरू तथा स्निग्ध पदार्थो का सेवन
- दिवास्वप्न, श्रम न करना
- पत्रशाक का सेवन
- मिट्टी खाने

सामान्य लक्षण

1. ज्वर
2. उदरशूल

3. हृदरोग
4. वर्ण परिवर्तन
5. छर्दि
6. भोजन के प्रति द्वेष
7. अतिसार
8. अवसाद
9. भ्रम
10. दुर्बलता

ज्वरो विवर्णता शूलं हृदरोगः सदनं भ्रमः।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सन्जातकृमिलक्षणम्॥

(सू.उ.54)

	रक्तज कृमि	श्लेष्मज कृमि	पुरीषज कृमि
1.संख्या	छः	सात	पाँच
2. नाम	1. केशाद 2. लोमाद 3. लोमद्वीप 4. सौरस 5. औदुम्बर 6. जन्तुमाता	1. अन्त्राद 2. उदराद 3. हृदयाद 4. चुरू 5. दर्भ पुष्प 6. सौगन्धिक 7. महागुद	1. ककेरूक 2. मकेरूक 3. लेलिह 4. सशूल 5. सौसुराद
3. स्थान	रक्तवाहिनी धमनियाँ	आमाशय, बढ़ने पर उपर नीचे सर्वत्र फैल जाते हैं	पक्वाशय प्रायः नीचे की ओर फैलते हैं परंतु अत्यंत बढने पर उपर की ओर बढते हैं
4. आकृति	सूक्ष्म, गोल अल्पपाद या पाद रहित	पृथु, चपटे, फिते के समान या गोल केचुए के धागे की तरह लंबे या छोटे	सूक्ष्म, गोल, ऊन के धागे के समान, स्थूल
5. वर्ण	ताम्र, रक्त	श्वेत, ताम्र	श्वेत, कृष्ण, हरित, पीत, नील

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

6. हेतु	कुष्ठोत्दपादक हेतु (अजीर्ण, अध्यशन, मछली, मधु, मूली आदि का सेवन) पित्त प्रकोपक एवं रक्तदुष्टि कर हेतु	मधुर रसात्मक आहार एवं कफवर्धक हेतु	श्लेषमज कृमि के हेतु के समान हेतु
7. विकृति लक्षण	केश, श्मश्रु, पक्ष्म लोम आदि का नाश कुष्ठ, तोद, व्रण में विचरण, रोमांच,अत्यंत बढ़ने पर त्वचा, सिरा, स्नायु, मांस, तरुणास्थि आदि का भक्षण0	हल्लास, प्रसेक,अरुचि अविपाक, ज्वर, मूर्च्छा जृम्भा, क्षवथु, आनाह, छर्दि, आलस्य, कृशता रुक्षता, तृष्णा, शोथ प्रतिश्याय, हृदरोग, शिरोरोग	अतिसार, कृशता, रुक्षता रोमहर्ष, गुदा में तोद एवं कण्डु अग्निमांद्य,आटोप, पाण्डु

विभिन्न आचार्यो के अनुसार कृमि के नाम एवं संख्या में मत मतान्तर है।

कृमि भेद	चरक	सुश्रुत	वाग्भट
1. बाह्य कृमि	2	–	2
2. रक्तज कृमि	6	7	6
3. श्लेष्मज कृमि	7	6	7
4. पुरीषज कृमि	5	7	5

सुश्रुतोक्त सात रक्तज कृमि नाम–

1. केशाद 2. लोमाद 3. नखाद 4. दन्ताद 5. क्विकश 6. कुष्ठज 7. परिसर्प

सुश्रुतोक्त सप्त पुरीषज कृमि के नाम–

1. अजव 2. विजव 3. किप्य 4. किंष्य 5. गण्डूपद 6. चुरु 7. द्विमुख

स्नायुक

माधव निदान परिशिष्ट में इस रोग का वर्णन मिलता है। यह कृमिजन्य रोग है, जो दूषित जल के कारण उत्पन्न होता है। यह रोग स्नायुओं को आक्रांत करता है अतः इसे स्नायुक कहा गया है।

निदान–दूषित जल का सेवन।

संप्राप्ति लक्षण–अतिवृष्टि आदि कारणों से दूषित जल के सेवन से दोष प्रकुपित होकर विसर्प की तरह हस्तपाद में शोथ उत्पन्न कर उसका भेदन करता है। उस उत्पन्न हुए क्षत में स्नायु को सुखा कर श्वेत तंतु के समान गोल कृमि को उत्पन्न कर धीरे-धीरे त्वचा से बाहर निकालता है। यदि यह पूरी तरह से निकल जाता है तो रोग शांत हो जाता है, किंतु यदि बीच से टूट जाता है तो इसका अत्यंत प्रकोप हो जाता है। पुनः अन्य स्थान पर उपरोक्त रीति से निकलने लगता है।

बाहु या जंघा में प्रमादवश टूट जाने से वह अंग संकुचित होकर उसमें धीरे-धीरे खंजता उत्पन्न हो जाती है। टूट जाने पर विभिन्न उपद्रवों को उत्पन्न करता एवं प्राणनाशक होता है।

भेद

दोष प्राबल्य के आधार पर आठ भेद किए गए है–

1. वातज 2. पित्तज 3. कफज 4. वातपित्तज 5. पित्तकफज 6. कफवातज 7. रक्तज 8. सन्निपातज।

लक्षण

वातज	पित्तज	कफज	रक्तज	द्वंद्वज	सन्निपातज
1. तन्तु कपिश वर्ण का	1.नीलिमा युक्त	1. श्वेत वर्ण का	1. रक्त वर्ण का	दो-दो	तीनों दोषों के
2. रुक्ष	पीतवर्ण का	2. अत्यंत गुरु	2. अत्यंत दाह	दोषों के	सम्मिलित
3. अत्यंत पीड़ा युक्त	2.दाहयुक्त	3. स्थूल	युक्त	सम्मिलित लक्षण	लक्षण

श्लीपद

'शिलावत् पदं श्लीपदम्।'

जिस व्याधि में पैर शिला (पत्थर) की तरह स्थूल एवं कठोर हो जाए उसे श्लीपद कहते हैं।

प्रायः यह पैरों में होता है लेकिन अन्य लटकने वाले अंगों में जैसे–हस्त, कर्ण, मूत्रेंद्रिय, अंडकोष, ओष्ठ, नासिका आदि में भी होता है।

आचार्य चरक ने श्वयथु चिकित्सा में इसका वर्णन किया है। तथा मांस, कफ एवं रक्त की दुष्टि से जंघा, पिंडली एवं पाद पर होने वाले शोथ को श्लीपद कहा है।

आचार्य वाग्भट ने

'शनैः शनैर्घनं शोफं श्लीपदं तत्प्रचक्षते।'

कहा है। अर्थात् धीरे-धीरे बढ़ने वाले घने शोफ (शोथ) को श्लीपद कहा है। अतः यह चिरकारी व्याधि है।

श्लीपद का सामान्य लक्षण

यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेणः।
तच्छ्लीपदं स्यात् करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः॥

जो शोथ ज्वर एवं अत्यंत वेदनायुक्त वंक्षण प्रदेश से प्रारंभ होकर क्रमशः नीचे पैरों की ओर जाता है उसे श्लीपद कहते है। कई आचार्य हस्त-कर्ण-नेत्र-शिश्न-ओष्ठ एवं नासा में भी इसकी उत्पत्ति मानते हैं।

श्लीपद के भेद

दोषानुसार श्लीपद के तीन भेद है–

1. वातज श्लीपद
2. पित्तज श्लीपद
3. कफज श्लीपद

पूर्वरूप–वंक्षण अवस्थानमेवास्य पूर्वरूपम्।

वंक्षण प्रदेश (संधि) में अवस्थान (शोथ एवं शूल का प्रारंभ) ही इसका पूर्वरूप है।

भेदानुसार लक्षण

वातज श्लीपद	पित्तज श्लीपद	कफज श्लीपद
कृष्ण वर्ण का	पीताभ वर्ण का	श्वेतवर्ण एवं पांडु वर्ण का
रुक्ष	दाह युक्त	स्निग्ध
विदार युक्त	ज्वर युक्त	गुरु
तीव्र वेदना युक्त	मृदु	स्थिर
अकारण उग्रपीड़ा वाला		
प्रायः ज्वर युक्त		

ये तीनों ही श्लीपद कफाधिक्य से होते है। कफ दोष प्रधान व्याधि है।

साध्यासाध्यता

वल्मीकमिव संजातं कण्टकैरुपचीयते।
अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः॥

वल्मीक के समान, अनेक शिखर एवं ग्रंथियुक्त, एक वर्ष पुराना तथा बहुत बड़ा श्लीपद असाध्य होता है।

श्लीपद की उत्पत्ति

प्रायः पुराने जल से भरे रहने वाले तथा सब ऋतुओं में प्रायः शीतल रहने वाले देश (आनूप) में श्लीपद रोग विशेषकर होता है।

अपर असाध्य लक्षण

कफप्रकृति वाले व्यक्ति में कफकारक आहार-विहार के सेवन से उत्पन्न स्त्रावयुक्त, अतिउन्नत, सभी लक्षणों से युक्त; कंडुयुक्त, कफबाहुल्य श्लीपद को असाध्य जाने।

Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shashi

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

ग्रन्थ परिचय

प्रस्तुत ग्रथ भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद, नई दिल्ली (CCIM) द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार लिखा गया है। रोगनिदान एवं विकृति, द्वितीय भाग के सभी विषयों का इसमें पाठ्यक्रम के अनुसार सरल भाषा में वर्णन किया गया है।

प्रथम भाग के अनुरूप इस भाग में भी आधुनिक विज्ञान से संबंधित विषयों को अंग्रेजी में ही लिखा गया है। स्नातक स्तर के छात्रों हेतु आवश्यक सामग्री को संग्रहीत कर उसे सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आवश्यकतानुसार चित्रों एवं चार्टस का प्रयोग कर विषय को आकर्षक एवं सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है।

आयुर्वेदीक एवं आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में वर्णित रोगों का सर्वांगण वर्णन इस ग्रन्थ के माध्यम से छात्रों को एक ही जगह उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है। अतः यह ग्रन्थ न केवल स्नातक छात्रों अपितु स्नातकोत्तर छात्रों एवं चिकित्सकों हेतु भी उपयोगि सिद्ध होगा।

चौखम्भा ओरियन्टालिया
पोस्ट बॉक्स नं. 2206
बंगलो रोड, 9-यू.बी., जवाहर नगर (कमला नगर के पास), दिल्ली-110007
फोन : 23851617, 23858790
Email : chaukhambhaorientalia@gmail.com, www.chaukhambhaorientalia.com

मुद्रक : राजेन्द्रा प्रोसेस-9811153301